।।श्रीः।।

।। कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम् ।।

श्रीमङ्गलगीतागीतम्

ShriMangalgeetageetam

महर्षिव्यास-प्रणीत श्रीमद्भगवद्गीता के सम्पूर्ण अष्टादश अध्यायों का लोकभाषा में समानार्थक पद्यानुवाद

डॉ० जगदीश मिश्र



।।श्रीरस्तु।।

पुस्तक-परिचय एवं उद्देश्य

अपने परम् पूज्य पिता महाकवि आचार्य पं० श्री शिवमंगल मिश्र 'मंगल' जी से प्रेरित होकर काव्य-सृजन के द्वारा कुछ प्रचलित आर्ष-ग्रन्थों में वर्णित ज्ञान-भण्डार को ललित एवं गेय छन्दों में जनमानस तक पहुँचाना ही मेरा उद्देश्य है। यही कार्य मेरे पूज्य पिता जी ने भी महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश महाकाव्य के समस्त १९ सर्गों का सम-श्लोकी हिन्दी पद्यानुवाद करके पूर्ण किया जो प्रकाशित भी हो चुका है और संस्कृत-हिन्दी जगत् के विद्वानों द्वारा प्रशंसित है। इसी क्रम में अपने पूज्य पिताजी की ही प्रेरणा एवं आशीर्वाद से मैंने भी विश्वविख्यात श्रीमद्भगवद्गीता के मूल दार्शनिक रहस्यों को लोकभाषा के दोहा, चौपाई, गौरी, छप्पय आदि विभिन्न जनसामान्य के बीच प्रचलित छन्दों द्वारा समानार्थक प्रारूप में "श्री मङ्गलगीतागीतम्" नामक इस पुस्तक में छन्दबद्ध किया है। मूल श्लोकों के अर्थ को यथावत् प्रस्तुत करते हुए तथा किसी भी अपने निजी विचार एवं टीका-टिप्पणी आदि से बचते हुए पद्य-प्रवाह बाधित न हो, ऐसा प्रयास किया गया है।

–डॉ० जगदीश मिश्र

श्रीगणेशायनमः

श्रीत्रिपाठिकुलेन्द्वे अनुरागं समर्पितम्
निमित्तं जगदीशेन, दिव्यं गीतानुगायनम्
अस्ति ॥

डॉ जगदीशमिश्र
93051216 ॥

दिनाङ्क 15/01/2020

[illegible]

॥श्रीः॥

श्रीमङ्गलगीतागीतम्

महर्षिव्यास-प्रणीत श्रीमद्भगवद्गीता के सम्पूर्ण अष्टादश अध्यायों का लोकभाषा में समानार्थक पद्यानुवाद

(चौपाई, दोहा, गौरी छन्दादि छन्दों में)

अनुगायकः

डॉ० जगदीश मिश्रः

एम.ए. (संस्कृत), ज्योतिष साहित्यायुर्वेदाचार्यः

प्राचार्यचरः

पंक्तिपावन गुरुकुल महाविद्यालयः

चौमुखा, विजयीपुर, गोपालगंज, बिहार

प्रकाशक :
डॉ० जगदीश मिश्रः
जैतपुरा (भोरे), गोपालगंज, बिहार
पिनकोड-८४१४२६
मो०नं० ९३०५१२१६११

संस्करण प्रथम : २०१८
(५०० प्रतियाँ)

मूल्य : ५००/- (पाँच सौ रुपये मात्र)

अक्षर संयोजन :
डिजाइन प्वाइंट, वाराणसी

मुद्रक :
श्री महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी

।। श्री गणेशाय नमः ।।

श्रीमङ्गलगीतागीतम्

अगजाननपद्मार्कं, गजाननमहर्निषम्।
अनेकदन्तंभक्तानामेकदन्तं भजाम्यहम्।।
यत्फलंनास्ति तपसा, न योगेन समाधिना,
तत्फलं लभते सम्यक्, कलौ केशव कीर्तनात्।।

चौपाई–

जो फल नाहिं सुलभ तपध्याना, योग समाधि लगत विधि नाना।
एहिं कलि काल मिलिहि फलते ही, केशव कीर्तन गावन से ही।।

उपजाति छन्द

जो पूज्य योगादि समाधि से भी, न प्राप्त होते तप साधनों से।
वे प्राप्त होते कलि में सभी ही, श्री कृष्णजी के प्रिय कीर्तनों से।।

(श्रीम.भा. माहात्म्य प्रथम अध्याय श्लोक ६८)

"न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो, जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा, न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः।।
तद्वाग्विसर्गो, जनताघविप्लवो, यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि, यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृह्णन्ति साधवः।।

(श्रीम.भा. प्रथम स्कन्ध अध्याय ५ श्लोक १०-११)

अर्थात् जिस प्रकार की वाणी से, यद्यपि वह विविध अलङ्कारादिरसभावयुक्त ही क्यों न हो, सम्पूर्ण जगत को पवित्र करने वाले हरि का यदि यशगान नहीं होता है तो वह कौओं के लिए जूठा फेंकने के स्थान की भाँति निक्रिष्ट और अपवित्र मानी जाती है। मान सरोवर के कमलवन में विहार करने वाले हंसों के समान ब्रह्मलोक में विहरने वाले भगवत्प्रेमी परमहंस कभी भी उसमें रमण नहीं करते।

ठीक इसके विपरीत जिसमें सुन्दर अलंकारादि रचना भी नहीं है तथा जो दूषित शब्दों से युक्त भी है किन्तु जिसका प्रत्येक पद श्री भगवान के यशगान करने वाले नामों से युक्त है वह पवित्र वाणी लोगों के समग्र पापों का विनाश कर देती है, क्योंकि सज्जन पुरुष इसी प्रकार की वाणी का श्रवण, कीर्त्तन और गायन करते रहते हैं।

शारदा वन्दना

भूल-चूक मेरी मात शारदे! बिसार दे!
ब्रह्म, विष्णु, रूद्र की तू शक्ति, शक्तिशालिनी,
कि मूर्खता-विमूढ़ता निवारती निवार दे!
भारती-प्रचारिणी, विहारिणी सुबाणि बीच-
देश की सुधारिणी तो वेश को सुधार दे!
हंस की सवारी पै सवार मँहतारी तू-
सुनीति में प्रतीति दे, कुनीति को बुहार दे!
दास को निराश जान शुद्ध-बुद्धि दान देहु,
भूल-चूक मेरी मात शारदे! बिसार दे!
वाद्य वीणवादिनी सवेद-वाक्य-भाषिणी कि
प्यारती सपूत को कुपूतनों में प्यार दे!
बुद्धि का विकास हो, कुबुद्धि का विनाश हो कि
अन्धकार-मूढ़ता को मूल से उखाड़ दे!
कोल के जवान में, भकोल की जुबान में कि
ज्ञान-दीप-आरती सवाँरती सँवार दे!
प्रानके समान ही जहान बीच ध्यान देहु,
भूल-चूक मेरी मात शारदे! बिसार दे!
पति पत्नीव्रत-रत, पत्नी पातिव्रत होवे,
शिष्ट-शिष्य शिक्षकों में स्नेह-रस ढार दे!
गेह-गेह प्रीति बढ़े, देह-देह कीर्ति बढ़े,
सर्व देश-देशियों, विदेशियों में प्यार दे,
गाँवे-गाँव मंगल भू-नभ पर मंगल कि
सारे जग-जंगलों में मंगल विहार दे!
तब्बे माई! मंगल पै, अचल सुमंगल दे,
भूल-चूक मेरी मात! शारदे! बिसार दे!

-आचार्य पं० श्री शिवमंगल मिश्रजी 'मंगल'

श्री बगलार्धशतकम्

दोहा

शिव-गुरु-पद वन्दन करि, करिवर वदन मनाइ।
वरणौं बगला-विमल गुण, मन कलि-कलुष बिहाइ।।
खानि सकल अघ जानिके, मानि मोहि निज दास।
धन-जन-बल बगले! मोहिं, जानि देहु पद-आस।।

चौपाई

जयतु-जयतु जय बगला माता, जयतु विष्णु-शिव-शक्ति विधाता।
कनक-सिंहासन आसन डारी, स्वर्ण-सूर्य सम प्रभा तुम्हारी।
मुकुट इन्दु हृदि चम्पकमाला, प्रकटत तेज त्रिनेत्र विशाला।
हाथ पाश अरु मुग्दर शोभे, रसनाबद्ध विमुख-तन क्षोभे।।
जननि! सुपीत वस्त्र प्रिय तोही, शोभा ललित जगत् मन मोही।
अस तव रुप जो ध्यावहिं माता, विगत-विपत्ति परम सुख पाता।
गुरुहिं पूजि पुनि आज्ञा माँगी, शिवहि- गुरहि-देवी समजानी।
छत्तिस अक्षर मन्त्र जो जापे, ब्रह्म-अस्त्र तेहि शत्र निपाते।
बन्ध्या पावहिं पुत्र शतायू, संतति-सुख पावहिं पूर्णायू।
विद्या-सुख-सौभाग्य खजाना, पुरुष समर जीते अरि नाना।
ताके दर्शन से रिपु काँपै, करहु कृपा जननी तुम जापै।
होहिं शास्त्र-विद् सम्मुख जबहीं, मूक होहिं जड़मति ते तबहीं।
बगला-नाम जपत मन माहीं, शत्रु-शोक-ऋण शीघ्र नशाहीं।
जपहिं नाम तव साधक मन में, शीत होइ वैश्वानर क्षण में।
जय भैरवि! जय विजया माता, भद्रकालि! दुःख करहु निपाता।
जय महेशि! श्री! विद्ये! समये! जय त्रिपुरे! जय करुणानेत्रे!
जय वराहि विश्वाश्रय काली, रुद्र मूर्ति-जय-जय रुद्राणी।
वेद-मातु जगमोहिनि जननी, जयतु-जयतु सब संकट हरनी।
जय सुन्दरि! सौभाग्य-प्रदायिनि, जय मोहिनि! जय शत्रु विदारिणि।
जय ललिता, भुवनेश्वरि माता, मातंगी सब सिद्धि प्रदाता।
भक्त सुनाम तुम्हार उच्चरहीं, लक्ष्मी पाइ विश्व वश करहीं।
साध्य असाध्य जो निज मन आवे, बगला कृपा सहज सब पावै।
जप अर्चन विधि करऊँ प्रकाशा, जाते होत दुसह-दुख-नाशा।
प्रथमहिं बगला यंत्र मँगावे, अथवा बगला मूर्ति बनावे।

पीत माल्य पीताम्बर धारे, गुरु-गणेश-शिव शब्द उच्चारे।
पीत-पुष्प शुभ निशा[१] चढ़ावे, पीताम्बर माता पहिनावे।
पीतहि भोज्य सुपीतहि पाना, पीतहि वस्तु देइ विधि नाना।
पीताक्षत् अरु मोदक बेसन, कुंकुम् गंध सुपीतहि-चन्दन।
यथा ज्ञान विधि नहिं अभिमाना, पूर्ण समर्पित पुत्र समाना।
घृतदीपक महुँ पीतहि बाती, यथा समय पूजहु दिन-राती।
माल्य हरिद्रागाँठ बनाई, जपहिं मन्त्र माता चित लाई।
पूजा सकल समर्पित करई, मातु आरती करि हिय धरई।
नीराजन करि हवन करावे, तब जपके पूरण फल पावे।
मधु-घी-शक्कर-लवण मिलाई, आकर्षण हित हवन कराई।
लवण-हरिद्रा ताल[२] मिलावे, तेहि क्षण शत्रु मूक हो जावे।
सरसो होम करे नर जबहीं, होंहिं चराचर वश में तबहीं।
पय-तिल-तण्डुल हवन करावे, विपुल सम्पदा निश्चय पावे।
घृत-मधु-शक्कर लेइ मँगाई, दूर्वा-गुडुचि सप्रेम मिलाई।
होम करहिं जो दश-शत बारा, क्षण महुँ नाशै रोग अपारा।
पात कनेर अशोक मिलावे, पुत्र-प्राप्ति हित हवन करावे।
सेमल पुष्प से हवन जो करहीं, शत्रु पराजित हो क्षण तबहीं।
दश सहस्त्र जप करे विधाना, पूरण होई मनोरथ नाना।
बगला सूत्र कहउँ समुझाई, गुरु-पूजा बिनु सिद्धि न पाई।
बिन गुरु कृपा सफल नहिं होई, जीवन सकल जतन कर कोई।
निश्चल मन यह पढ़े पढ़ावे, सो जन मन वांछित फल पावे।
मातु चरण जाके जिय लागी, सो नर-नारि होहिं बड़ भागी।
यथा ज्ञान विधि करउँ बखाना, कुछ अनुभव कुछ शास्त्र प्रमाना।
जो असाध्य ठाने मन कोई, बगला शरण गहे नर सोई।
बगला पूर्ण करे सब आशा, जप जिय जानि करे विश्वासा।
सत्य होहि यह आशिष वैसे, वृथा होइ गुरु वचन न जैसे।

दोहा

साधक मन पूरण करें, बगला-रुद्र-गजेन्द्र।
सर्व विघ्न संकट हरें, महा - विष्णु-देवेन्द्र।।
शिव-मंगल-पीताम्बरा, नाइ गुरुहि पद शीष।
यह प्रस्तुति अर्पित करें, मंगल सुत जगदीश।।

१. निशा = हल्दी। २. ताल = हरताल

शिवस्तुतिः-

दोहा- त्रिभुवन सम्पति लेखके, चित्रण के आधार।
चिदानन्दशिवब्रह्म की, विनती बारंबार।।१।।

चौपाई-

कहहिं वेद-विद् विषय समाना। 'ब्रह्म' शब्द नित भाव बखाना।।
जगतमूल सोइ शिवप्रदध्याना। देइ, जोरि कर करउँ प्रणामा।।२।।

छत्तिस तत्त्व समूह प्रकाशा। जिसकी लहर बुद्बुदाभासा।।
निर्मल चित्ति सिन्धु शिवनामा। करउँ प्रणाम सकल गुणखाना।।३।।

जेहिप्रकाश जग भासित होई। जेहि अनन्द नन्दित जग सोई।।
सबगुण परे विपुल धन स्वामी। तेहि परमात्म चरण प्रणमामी।।४।।

शिव से भू तक करइ प्रकाशा। सकल तत्त्व तेहि तेज सुभासा।।
दोषरहित जेहि सरल सुभाऊ। तेहि सित शम्भु-चरण शिर नाऊ।।५।।

धरइ देह निजमति अनुसारा। निजमति रूप जगत व्यवहारा।।
निज रुचि लोक तीन रचि डारा। साम्ब शंभु-पद नमन हमारा।।६।।

अधिपति निधि-असीम जग जोई। सरल स्वभाव अनुत्तम होई।।
तेहि त्रिशूलधारी शिवपादा। वन्दन करउँ नाइ निजमाथा।।७।।

शक्तिस्तुतिः–

चौपाई–

शास्त्रविशारद सुधि जेहिजाने। लोकमूल कारण जेहिमाने।।
धर्मपत्नि शिव देविशिवा के। नमन करूँ निज माथ झुकाके।।८।।

जेहिके युक्त नाम-गुण से ही। शम्भु महेश भये जग-जेही।।
परम शक्ति मायासम केही। नमनपुष्प अर्पित पद तेही।।९।।

भई प्रकट शिव प्रथमहिं जोई। शान्ति अतीत कला पर सोई।।
उत्तर पुनः कला जग माता। तेहि पद विनय करूँ धरिमाथा।।१०।।

शिवइच्छा ज्ञानादिस्वरूपा। दीप्ति प्रकशित विश्व अनूपा।।
लहर प्रबोध मोद की जोई। करउँ प्रणाम विनयनत होई।।११।।

दोहा– सुधाहेतु शरणागत, जो जन भक्त महान।
सद्विद्या देती उन्हें, जेहि सम दान न आन।।१२क।।

वह ईशान सुभामिनी, जो शिवप्राण समान।
तेहि पद मैं वन्दन करूँ, रहित सकल अभिमान।।१२ख।।

बताईं कइसे

महिमा अपनी गीता माई की बताईं कइसे।
जब अपने नाहीं समझीं, समुझायीं कइसे।।

दर्शन कर्म योग सबके फल कृष्ण कृपा से पावे।
कृष्ण तत्व संसार सार ह, जे एके अपनावे।
जब कुछऊ नइखे आपन अपनायीं कइसे।
महिमा अपनी गीता माई की बताईं कइसे।।१।।

जीव देह में अन्तर बाटे, जीव ब्रह्म में नाहीं।
देह जीव बिन माटी बाटे, ई जाने के चाही।
ई दर्शन नाहीं बुझनीं त बुझाईं कइसे।
महिमा अपनी गीता माई की बताईं कइसे।।२।।

ब्रह्म आत्मा एके हवे, अजर अमर इ बाटे।
ना हवा सुखावे आग जलावे, शस्त्र कबो ना काटे।
जब ब्रह्मसूत्र ना सिखनीं त सिखाईं कइसे।
महिमा अपनी गीता माई की बताईं कइसे।।३।।

आस्तिक–नास्तिक दर्शन पढ़नी, वेद अन्त की बानी।
गुरु मुख से जो सुननीं–बुझनीं उहे बतावत बानी।
असली बतिया नाहीं जननीं त जनाईं कइसे।
महिमा अपनी गीता माई की बताईं कइसे।।४।।

कर्म में अधिकार सभी के ना फल के अधिकारी।
फल के आशा छोड़ि सभी का कर्म करे के चाहीं।
एइसे अधिका नाहीं गुननीं[१] त गुनाई कइसे।
महिमा अपनी गीता माई की बताईं कइसे।।५।।

---

१. गुननी – समझा।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

कवि-कथनी

चौपाई-

मात-तात-गुरपद धरि ध्याना,
पुनि शुचि सन्त वेद विद् नाना।
वालमीकि-कवि प्रथम कहाये,
छन्द, अनुष्टप् काव्य बनाये॥१॥

तदुपरि व्यास, विष्णु अवतारा,
जोइ रचि देइ पुरानन सारा।
अष्टादशहि पुराण-प्रकारा,
तेहि महुँ विविध प्रसंग विचारा॥२॥

आकर-ज्ञान विश्व के जोई,
वविध कथानक भारत-होई।
तेहि भारत महुँ गीता ज्ञाना,
प्रभु प्रत्यक्ष निज-मुखहिं बखाना॥३॥

एहि कारण महिमा अति होई,
यह दरशन समुझहिं कोई-कोई।
गीता-पद्म पुष्प धरि हाथा,
श्रीभानन पद नावऊँ माथा॥४॥

करहु दया करि ज्ञान-विकासा,
गीता-गीत रचउँ शुचि भाषा॥५॥

---

१. श्रीभानन = श्रीगणेशजी।

दोहा–

शिवमङ्गल – पीताम्बरा,
नाइ गुरुहि पद शीष।
यह रचना अर्पित करे,
जैतपुरी जगदीश।।६।।

ई रहस्य अति गूढ़ बा,
भक्ति–हीन नहीं पाइ।
पारथ के प्रिय मानि के,
प्रभुजी दिये बताइ।।७।।

चौपाई–

वेद, सिन्धु–नभ नेत्रहि जोई,
यह विक्रम शुभ सम्बत होई।
दशमी, असित मास बइशाखा,
ले, मन–मोह, मधुर मधुमासा।।८।।

मन प्रसन्न होइ गावउँ गीता,
साधु असाधु न मन भयभीता।
आर्किवार निशि भयउ विचारा,
गावउँ गीता मति अनुसारा।।९।।

दोहा–

गुडाकेश, प्रभु कृष्ण के,
ई उत्तम संवाद।
ब्रह्म ज्ञान सहकर्म के,
नाता, बा अविवाद।।१०।।

---

१. नभ=शून्य। २. नेत्र दो (२)। ४–वेद। सिन्धु =६ (दाहिने से बायीं ओर गिनने पर २०७४ सम्बत् हुआ)। ५. असित=कृष्णपक्ष ६. आर्किवार= शनिवार

चौपाई–

बनि विधि रचइ विविध संसारा,
हरि बनि पालहिं जगत अपारा।
रुद्र रूप धरि सब लय करहीं,
एकहि कृष्ण त्रिविध तन धरहीं।।११।।

नाशइ अरि सुर सन्त उबारा,
संकट रहित किये जग सारा।
सारथि बनि पारथ समुझाए,
धर्मयुद्ध लगि सबहिं जगाए।।१२।।

काल-काल बनि कुरुदल नाशा,
तहँ अर्जुन मन भयउ निराशा।
भयउ मोह वश पार्थ सभीता,
रणमहुँ कहेउ सुमंगल गीता।।१३।।

अस प्रभु कृष्ण चरण जलजाता,
सरल भाव नावउँ निज माथा।
यथा ज्ञान बुधि करउँ बखाना,
यह गीता श्रुति ज्ञान समाना।।१४।।

जस नभ पतित सलिल सब संगा,
बहत-बहत मिलि सागर गंगा।
मम मानस निरगत कृति एहि,
तस अर्पित प्रभु पादन में ही।।१५।।

चौपाई

एहिमहुँ बरणित जोइ विचारा,
सब कुछ- मूल ग्रंथ के सारा।
एहि अध्याय लिखित जस जोही,
ग्रामिण छन्द कहहुँ हम सोही।।१६।।

प्रथमसकन्ध भागवत के ही,
पुनि अध्याय पाँचवें में ही।
नारद मुनि, मुनिव्यास बताहीं।
दस ग्यारह अशलोकन माहीं।।१७।।

सब रसभाव-श्लेषलंकारा,
रूपक, यमक, अनेक प्रकारा।
उपमा विविध विचित्र बखाना।
अभिधा अवर, लक्षणा नाना।।१८।।

सकल काव्यगुण भलु तेहि होई,
हरि यश-गान लिखित नहिं जोई।
अति घिन काव्य होइ वह वइसे,
काक उच्छिष्ट भूमि भइ जइसे।।१९।।

मानस रुचिर कमलवन शोभे,
हरि पदरत सुधि संत न लोभे।
तेहि विपरीत सकल गुणहीना,
नहिं अस कवि कोउ काव्य प्रवीना।।२०।।

दूषित शब्द सहित कवि वानी,
पर, जेहि हरि यश मधुर बखानी।
गावहिं सुनहिं सुजन सुधि तेही,
रमत भ्रमत पावहिं सुख वे ही।।२१।।

नाशहिं जग-अघ दोष अशेषा,
अति उत्तम वह काव्य विशेषा।
एहि जिय जानि रचित जस जोई,
होहिं मुदित मन सुधि सब कोई।।२२।।

सोझ टेढ़ जानऊँ नहिं कोऊ,
कृष्ण-दिव्यगुण वरणित सोऊ।
भाषा छन्द अरथ अपराधू,
एहि मन मानि क्षमहु सब साधू।।२३।।

एहि लौकिक भाषा प्रिय होई,
बहु विधि छन्द प्रबन्ध सँजोई।
निज मति रूप रचित चउपाई,
दोहा-छन्द मधुर चित लाई।।२४।।

दोहा–

यशदायी एहि ग्रंथ के,
करहु द्वारिकाधीश
विनय करत कर जोड़िके
मंगल - सुत जगदीश।।२५।।

डॉ. अर्जुन तिवारी
(पूर्व पत्रकारिता विभागाध्यक्ष, काशी विद्यापीठ
निदेशक

एन.10/29के-1, जानकीनगर
बजरडीहा, वाराणसी-221109
मोबाइल : 0876584

शुभाशंसा

गीता का अनुपम अनुवाद

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं एको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।

संसार के समस्त ग्रन्थों के सार वेद हैं, वेदों के सार उपनिषद् है, उपनिषदों का सार गीता है। श्री वेदव्यास जी ने महाभारत में गीता का महत्व प्रतिपादित किया है:-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

गीता सुगीता करने योग्यहै जो स्वयं पद्मनाभ विष्णु भगवान के मुखारविन्द से निकली हुई है। ऐसे दिव्य ग्रंथ का सार भगवान की शरणागति है जो अनन्य भाव से भगवत् शरण में जाता है वह व्यक्ति सर्वांशेन धन्य हो जाता है। देववाणी में सुलभ गीता को जन-जन का कंठहार बनाने के निमित्त 'जननीजनकौ वन्दे, पार्वतीपरमेश्वरौ' के उद्‌गाता आचार्य जगदीश मिश्र ने इसे लोकवाणी में उपलब्ध कराया। इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी भाषियों को धर्म, कर्म, अध्यात्म भी त्रिवेणी पर सुप्रतिष्ठित किया है जिसकी जितनी प्रशंसा हो वह कम ही है।

'यः प्रणियेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रो' को शब्दशः चरितार्थ करने वाले आचार्य मिश्र इस सदी के प्रख्यात महाकवि शिवमंगल जी मिश्र 'मङ्गल' के आत्मज हैं जिनमें अनुपमेय साहित्यिक वैभव है जिसका प्रमाण 'श्रीमङ्गलगीतागीतम्' है जिसका प्रकाशन साहित्य, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म जगत हेतु उल्लेख्य है। 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु' के अजस्र स्रोत के रूप में यह ग्रंथ संस्कृत, हिन्दी भोजपुरी एवं अन्य क्षेत्रीय भाषा-भाषियों के लिए वरदान स्वरूप है जिसके मूल में विश्वशान्ति के पुरोधा तथा अनवरत 'मानस-पाठ' के प्रति संकल्पित डॉ० शिवपूजन चतुर्वेदी जी की अहैतुकी कृपा है।

महर्षि व्यास-प्रणीत श्रीमद्भगवद्गीता के समस्त अठारहों अध्यायों का पद्यानुवाद अपने में अप्रतिम है जिसमें 'संदर्भ' और 'निचोड़' सोने में सोहागा स्वरूप है। प्रमाण प्रस्तुत है–

संदर्भ– धृत-संजय महुँ होइ जो बाता, सोइ गीता-दर्शन कहलाता।
सैन्य परीक्षण, रणमहुँ जोई, एहि अध्याय कथित सब सोई।।

निचोड़– कर्म-योग पुनि ज्ञान-विधाना, निजमुख समुझावत भगवाना।
पुनि कछु भक्तिहि योग बखाना, सार-रूप गीता गुण-गाना।।

सुबोध रूप में अनुपम शैली में प्रस्तुत गीता का अनुवाद संस्कृत से अनभिज्ञ बुद्धिजीवियों हेतु एक थाती है। विश्व साहित्य की बेजोड़ कृति को सर्वसुलभ बनाने में आचार्य मिश्र भारत की एक दिव्य विभूति के रूप में गणमान्य हैं। शुभम् भूयात्।

–अर्जुन तिवारी

शारदीया पूर्णिमा
संवत् २०७५ (वि०)



मुकुट-धारि, गद चक्रहि हाथा, विश्वरूप दरशावहु नाथा।
प्रकट होउ भुज चारिहि धारी, सहसबाहु! मम भाव विचारी।।



कवि-जनक
आचार्य श्री शिवमङ्गल मिश्र
'मङ्गल'

शिव सम तात, गौरि सम माता
नावउँ सिर तेहि, पद जलजाता।
मङ्गल तात मात अतिराजी,
तेहि कर कंज इ ग्रन्थ विराजी।।



कवि-जननी :
श्रीमती अतिराजी देवी



अनुगायक :
डॉ० पं०जगदीश मिश्र
प्राचार्यचर
पी.पी.जी. म.वि., गोपालगंज



कवि-पत्नी
श्रीमती फूलमति देवी



पुत्र
मनोज कुमार मिश्र



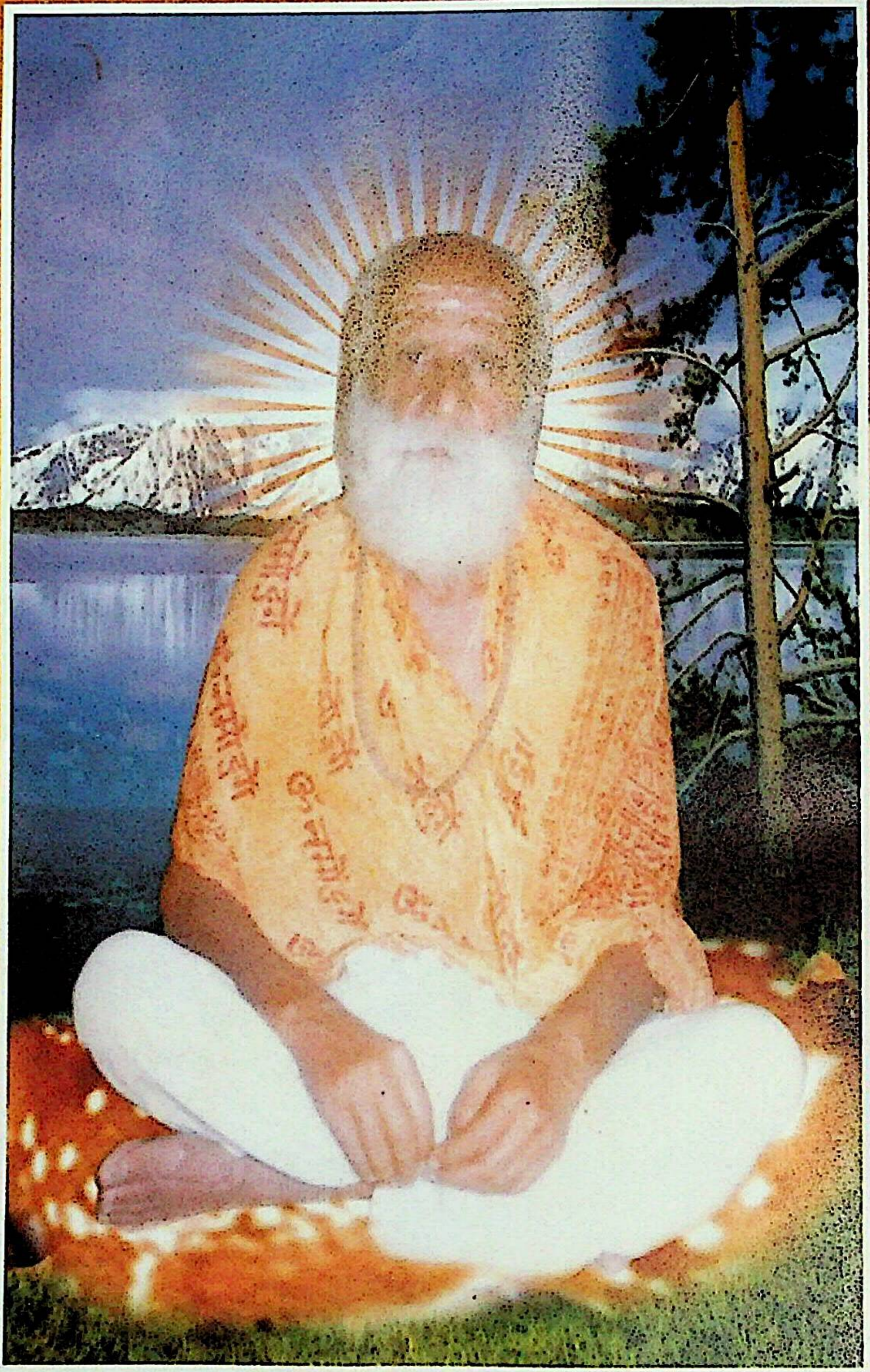
पौत्र
चि० अद्वैत मिश्र



पौत्री
कु० गौरांगी मिश्रा



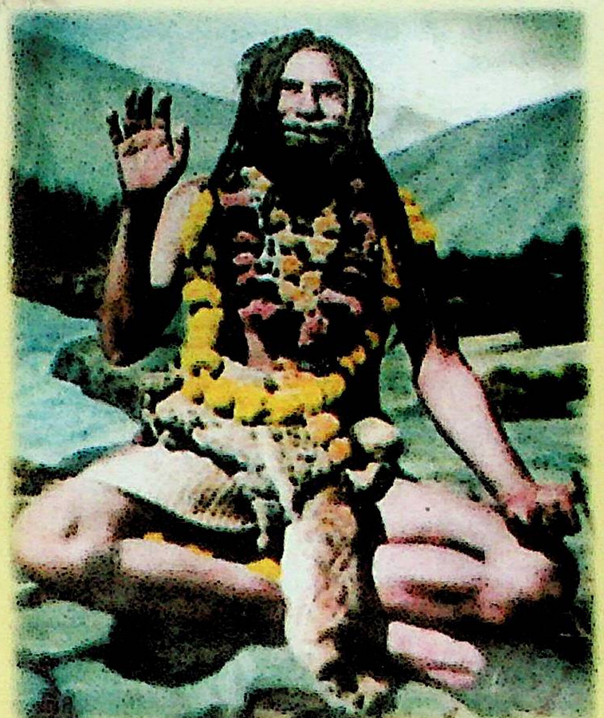
पुत्रवधू
श्रीमती नीलम मिश्रा



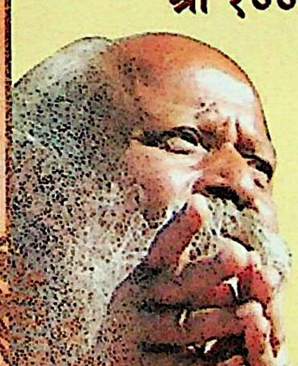
महाकवि आचार्य पं० श्री शिवमङ्गल मिश्र जी 'मङ्गल'



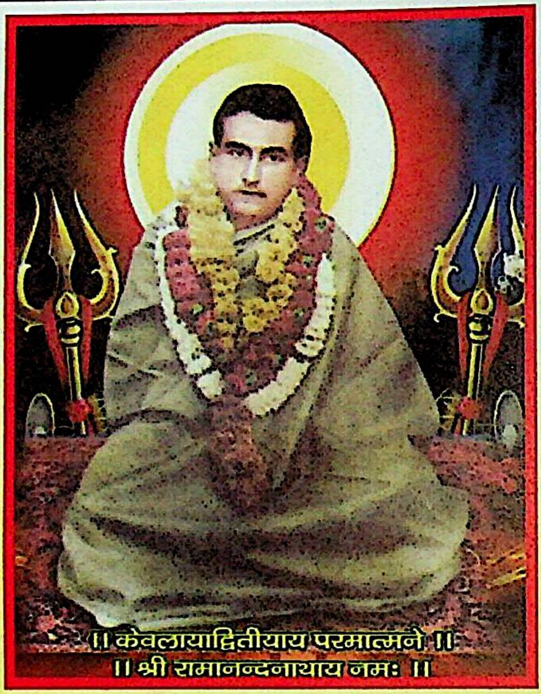
।। कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।



ब्रह्मर्षि योगिराज
श्री १००८ श्री देवराहाबाबा-ब्रह्मवेत्ता

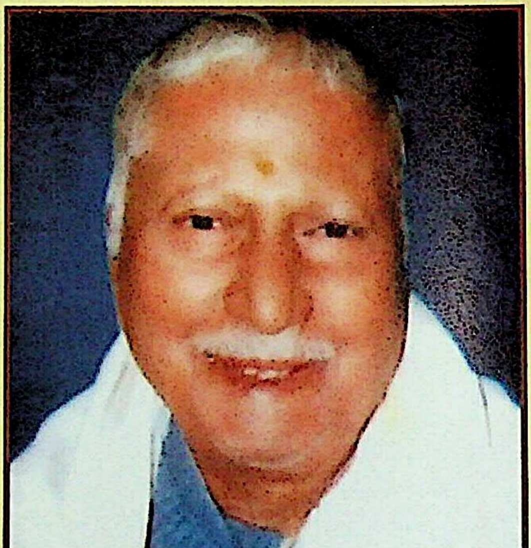


श्रीदेवरहाहंसबाबा जी

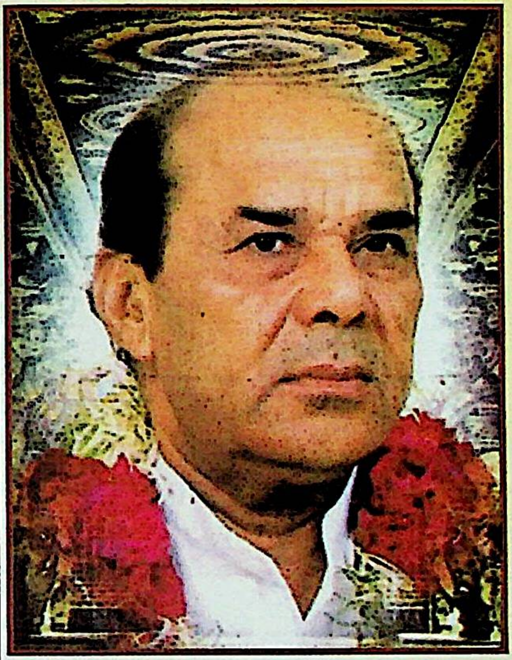


मूल प्रवर्तक, प्रेरणा
एवं आशीर्वाद
परमपूज्य
सद् गुरुदेव
डॉ० रामानन्द शास्त्री जी
'श्री आनन्दजी सरकार'
सिवान, बिहार

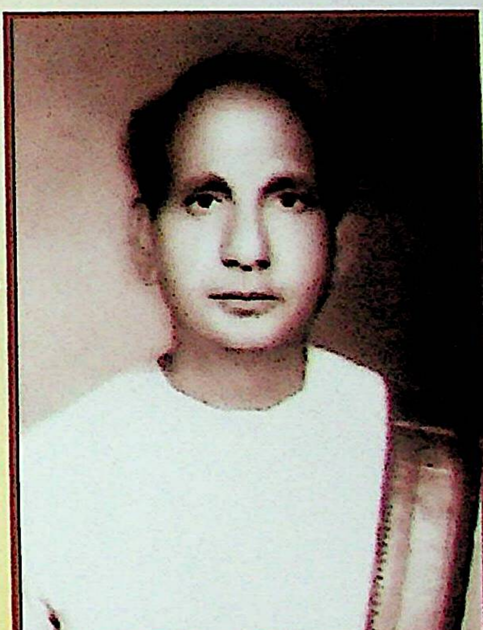
पथ प्रदर्शक एवं आशीर्वाद
महामहोपाध्याय
प्रो० मुरलीधर पाण्डेय जी
भदैनी, वाराणसी



सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ



प्रेरणा एवं आशीर्वाद
सद्गुरु परमहंस
स्वामी
निखिलेश्वरानन्द जी
महाराज
जोधपुर, राजस्थान



आशीर्वाद
प्रो० श्रीराम पाण्डेय जी
(डि०लिट्)
आचार्य, व्याकरण, न्याय,
साहित्य, साङ्ख्य, योग
एवं सर्व दर्शन।
शंकुलधारा, वाराणसी

सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ

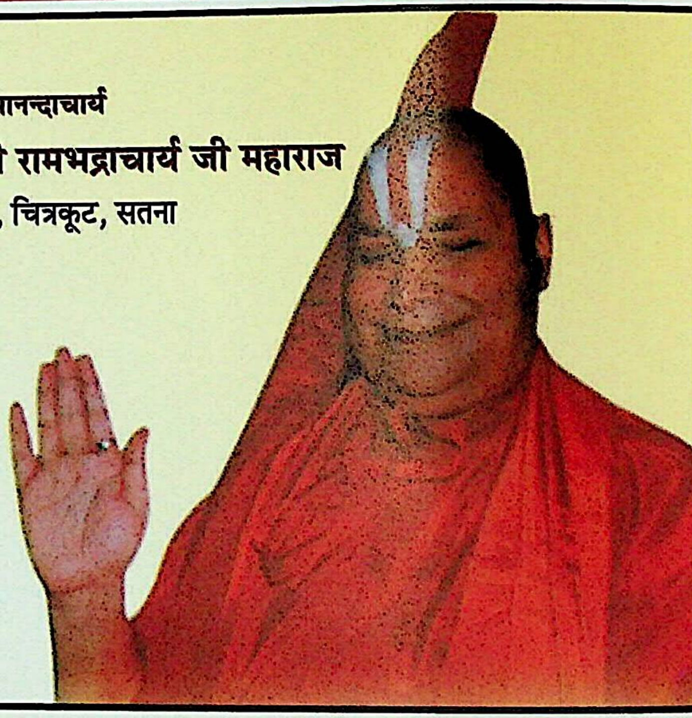
आशीर्वाद

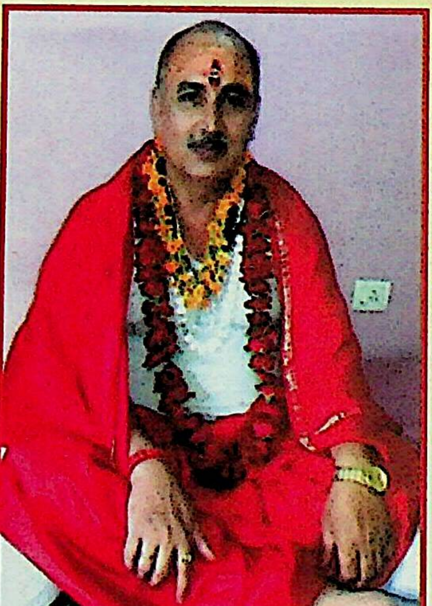
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी श्री रामभद्राचार्य जी महाराज

आमोद वन, चित्रकूट, सतना

मध्य प्रदेश





शुभकामना

श्री चन्द्रिकाधर पाठक जी

अर्चक

महामृत्युञ्जय मन्दिर

सामनेघाट, लंका

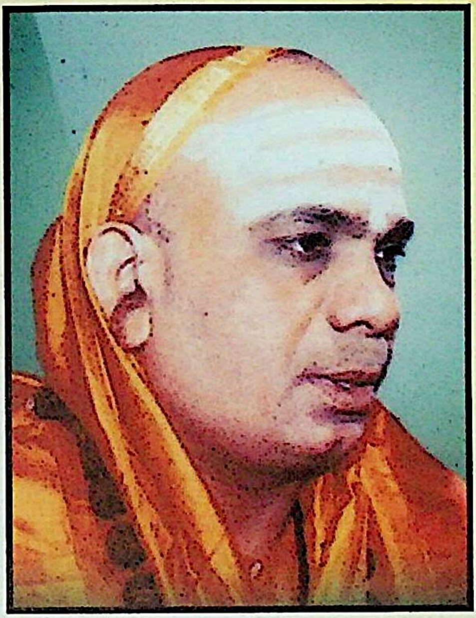
वाराणसी

व्यवस्थापक

मनोकामनेश्वर महादेव

करौंदी, वाराणसी

सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ



आशीर्वाद
जगद्गुरु
डा० चन्द्रशेखर शिवाचार्य जी महाराज
पीठाधीश्वर
जंगमबाड़ी मठ, काशी

शुभकामना
प्रो० ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी जी
डीन, शिक्षा संकाय
आर्यभट्ट ज्ञान विश्वविद्यालय
पटना

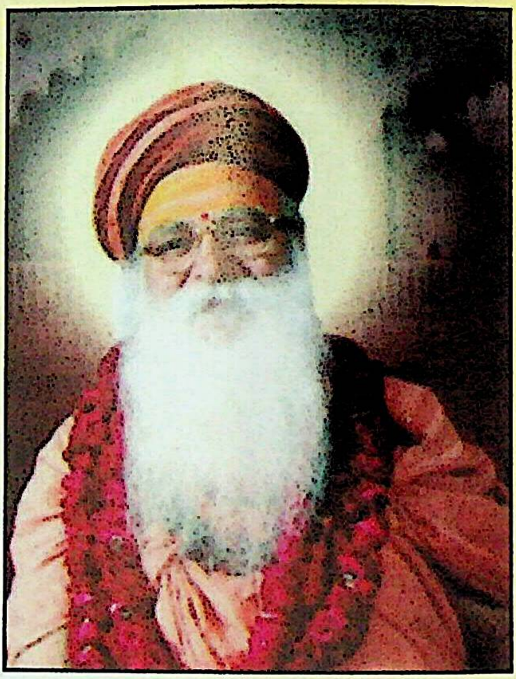


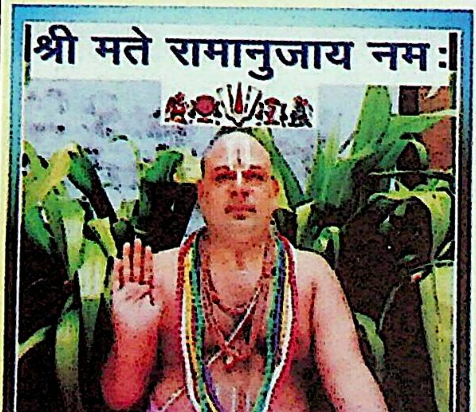
सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ

आशीर्वाद
कार्ष्णि पीठाधीश्वर
अनन्तश्री विभूषित
महामण्डलेश्वर

स्वामी कार्ष्णि
श्री गुरुशरणानन्द जी
महाराज

रमणरेवती, महावन,
गोकुल, मथुरा





आशीर्वाद
श्री १०८, श्री स्वामी महन्त
सुदर्शनाचार्य जी महाराज
नृसिंह मन्दिर, दारागंज,
प्रयागराज

सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ



ज.गु. स्वामी श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी महाराज
सुग्रीव किला,
श्री अयोध्याजी

आशीर्वाद
महन्त स्वामी
श्रीनृत्यगोपालदासजी
महाराज
श्री अयोध्या जी

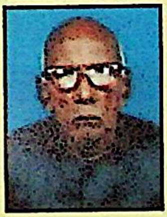




आशीर्वाद
महामहोपाध्याय, ज्योतिष मार्तण्ड
पं० श्री हीरालाल मिश्र जी
गणित-फलित ज्योतिषशास्त्राचार्य
पूर्व संपादक : हृषिकेश पंचाङ्ग,
संकटमोचन, वाराणसी

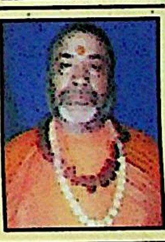
आशीर्वाद
प०पू० 'बालव्यास'
पं० श्री श्रीकान्त जी शर्मा
संस्थापक :
श्रीमद्भागवत ज्ञानयज्ञ प्रचार समिति





श्री अक्षयवर दीक्षित जी
दीक्षितौली, भोरे,
गोपालगंज, बिहार

दण्डी स्वामी
बनेश्वरानन्द तीर्थ
जी महाराज
कामरूप मठ,
दशाश्मेध, वाराणसी





शुभकामना
आचार्य श्री अरुण कुमार झा जी
प्रधान पंडित, राजमहल, काशीनरेश
रामनगर, वाराणसी

श्री जगजीतन पाण्डेय जी
महामंत्री,
श्री धर्मसंघ शिक्षा मंदिर
काशी, वाराणसी





श्री सुरेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव
(पूर्व राजपत्रित अधिकारी)
विजयीपुर, गोपालगंज,
बिहार

शुभकामना
डॉ० सुधाकर मिश्र जी
पूर्व संभागीय खाद्य नियंत्रक
उत्तर प्रदेश सरकार





शुभकामना
प्रो० कृष्णचन्द पाण्डेय
पूर्व डीन,
समाजविज्ञान संकाय,
महात्मागाँधी, काशीविद्यापीठ
वाराणसी

श्री कल्पनाथ पाण्डेय
धरहरा, वाराणसी



सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ



शुभकामना
प्रो० वीरभद्र मिश्र जी
महंत,
श्री संकटमोचन मंदिर
वाराणसी



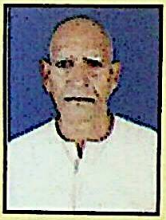
शुभकामना
प्रो. शिव शंकर उपाध्याय जी
छितूपुर,वाराणसी



शुभकामना
आचार्य श्री योगेन्द्रनाथ पाण्डेय जी
पश्चिमी चम्पारण, बिहार



शुभकामना
श्री पीताम्बर मिश्र जी
श्री योग मन्दिर नगवाँ,
वाराणसी



शुभकामना
हरिवंश दूबे जी
ग्राम- परानपुर, दिनारा
पो० महराव, रोहतास



शुभकामना
डॉ. रमाकान्त पाण्डेय जी
प्रधानाचार्य
अस्सी, वाराणसी



शुभकामना
श्रीमत्परमहंस आचार्य डॉ० जगदीश्वरानन्द (शास्त्री) जी
व्यवस्थापक : श्री गोविन्दमठ,
टेढ़ीनीम, वाराणसी



शुभकामना
डॉ० गणेश दत्त शास्त्री जी
शास्त्रार्थ महाविद्यालय,
दशाश्वमेध
वाराणसी



शुभकामना
आचार्य श्री आनन्देवरी मिश्रा जी
प्राचार्य,
भूदेव संस्कृत उच्च विद्यालय
गोपालगंज, बिहार



शुभकामना
आचार्य श्री श्यामाचरण त्रिवेदी जी
प्राचार्यचरः
नन्दलाल बाजोरिया सं.
महा.वि. अस्सी, वाराणसी



शुभकामना
प्रो० रमाकान्त पाण्डेय
राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित
पूर्व संकाय प्रमुख एवं अध्यक्ष
ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



शुभकामना
डॉ० सत्येन्द्र मिश्र
ज्योतिष विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ



शुभकामना

महन्तजी

मछली बन्दर मठ

वाराणसी

शुभकामना

महंत श्री सर्वेश्वर दास जी

तपस्वी जी की छावनी,

रामघाट, श्री अयोध्या जी

(महान उदार संत)





शुभकामना

डॉ० स्वामी शुकदेवानन्द सरस्वती जी महाराज

श्री सन्यासी सं० महाविद्यालय

ढुंढिराज गली, वाराणसी

शुभकामना

महंत श्रीरामानुज दासजी

श्री विजय राघव मंदिर

श्री अयोध्याजी





शुभकामना

श्री महन्थ मदनमोहन दास जी महाराज

(सिंहस्थ भूषण)

राष्ट्रीय अध्यक्ष :

अखिल भारतीय निर्मुही अखाड़ा, वड़ा बाजार

गोवर्धन धीर समीर वंशीवट, वृन्दावन

शुभकामना

श्री महंत ऋषिश्वरानन्द जी महाराज

श्री चेतन ज्योति आश्रम

भूपतवाला, हरिद्वार



शुभकामना

अनन्तश्रीविभूषित

स्वामी श्री अच्युतानन्दतीर्थ जी महाराज

भूमा निकेतन, सप्तसरोवर मार्ग,

हरिद्वार (उत्तराखण्ड)





शुभकामना

श्री तुलसीदास नव्यन्यायाचार्य

श्रीमद्भागवत विद्यापीठ,

(श्रीरामजानकी मन्दिर)

परिक्रमामार्ग, नयाघाट,

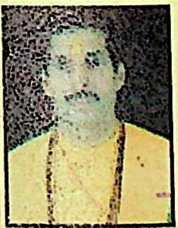
अयोध्या

शुभकामना

डॉ० कामेश्वर उपाध्याय

वाराणसी





शुभकामना

आचार्य श्री कामेश्वर मिश्र 'कामेश'

ग्राम- जैतपुरा, भोरे, गोपालगंज

बिहार

शुभकामना

श्री कामेश्वर प्रसाद यादव

भू.पू. जेनरल मैनेजर

कोल इण्डिया, नई दिल्ली



सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ



डॉ. विजय शर्मा जी
वेंकटेश पराङ्कुश सं० महाविद्यालय
अस्सी, वाराणसी

श्री रञ्जनदेव पाण्डेय जी
पूर्व-प्राचार्य
सेवाश्रम इण्टर कालेज,
सुरयावा, भदोही, वाराणसी





याज्ञिक सम्राट्
डॉ० श्री कैलाशचन्द्र दबे जी
पूर्व वरिष्ठ वेद-प्राध्यापक
का.हि.वि.वि., वाराणसी

डॉ० विजय कुमार पाण्डेय जी
एसो० प्रोफेसर
ज्योतिष : रानी पद्मावती
तारा योगतंत्र
आ०स०म०वि०
शिवपुर, वाराणसी





अनन्त श्री विभूषित
श्री स्वामी कमलाकान्ताचार्य जी
मठाधीश उत्तर तोताद्रिमठ
श्री वेङ्कटेश मन्दिर, विभीषण कुण्ड,
श्री ओयोध्याजी (उ०प्र०)

श्री चन्द्रप्रकाश पाण्डेय जी
ग्राम ठाकुर देवा,
पो० बरडीहा दल, देवरिया





श्री हृदय प्रकाश तिवारी जी
लोलार्क कुण्ड, भदैनी,
वाराणसी (उ०प्र०)

डॉ० जैनेन्द्र कुमार शुक्ल जी 'प्रभात'
भोरे, गोपालगंज
बिहार





श्री कैलाश सिंह जी
प्राचार्य, पी.पी.जी कॉलेज
चौमुखा, विजयीपुर
गोपालगंज

पं० भद्र नारायण पाठक जी
प्रधानाचार्य
अस्सी, वाराणसी





कविवर पंडित
श्री कुबेर नाथ जी 'विचित्र'
भिंडा, भाटपार रानी
देवरिया

दण्डी स्वामी राघवेन्द्र नन्द तीर्थ जी
निवास- श्री काशी मुमुक्षु भवन,
अस्सी, वाराणसी (उ०प्र०)



सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ



आचार्य श्री
पुरुषोत्तमाचार्य जी महाराज
श्री वैष्णव आश्रम
दारगंज, प्रयाग

वेदमूर्त्ति- आचार्य पं०
जगन्नाथ त्रिपाठी जी
पूर्व वेद विभागाध्यक्ष
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी





पं० प्रमोद त्रिवेदी जी
कथावाचक
काशी, वाराणसी

अनन्तश्री विभूषित
श्री स्वामी घनश्यामाचार्य
जी महाराज
अलोपीबाग, तीर्थराज प्रयाग





पं० श्रीकृष्ण पाण्डेय
कर्मकाण्ड मर्मज्ञ
ग्राम-हाटा, पो. चेनारी
जिला-रोहतास, बिहार

डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
पूर्व प्राध्यापक,
गोयनका संस्कृत महाविद्यालय
भदैनी, वाराणसी





श्री रामकृष्ण शास्त्री जी
पूर्व प्राचार्य,
श्री वैदिक आदर्श स्नातकोत्तर
सं.म.वि, अयोध्या

पं. श्री उमेश दत्त मिश्र जी
'वैद्य जी'
थाना रोड ,गोपाल गंज,
बिहार





आचार्य श्री रामलखन पाठक जी
पूर्व प्रधानाचार्य,
श्री सन्यासी संस्कृत
महाविद्यालय,
ढुन्ढिराज गली,वाराणसी

श्री हरिचेतन
ब्रह्मचारी जी महाराज
परमाध्यक्ष श्रीमत् परमहंस,
टीकरमाटी मठ, झूसी, प्रयागराज





श्री हरिप्रपन्नाचार्य जी
कूर्म मन्दिर, अयोध्या

श्री मैनेजर पाण्डेय जी
इमिलिया, भोरे,
गोपालगंज, बिहार



सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ



श्री श्री १००८ दण्डीस्वामी जगन्नाथ बोधाश्रम
काशी मुमुक्षु भवन
वाराणसी

परमभगवत, ज्योतिर्विद
पं० वागीश दत्त मिश्र शास्त्री
सराय वाले, चन्दनचौक,
शूकरक्षेत्र सोरों





आचार्य श्री कुबेर नाथ मिश्र जी
ग्राम जैतपुरा वैद्य, भोरे
गोपालगंज, बिहार

श्री कन्हैया पाण्डेय जी
ग्राम रूपी, बगही, कटेयाँ
गोपालगंज, बिहार





श्री सर्वजीत पाठक जी
ग्राम पटखौली, नौतन
सिवान, बिहार

पं० श्री सहदेव मिश्र जी
साहित्यायुर्वेदाचार्य
जैतपुरा, भोरे, गोपालगंज,
बिहार

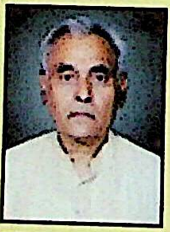




आचार्य पं० सुरेन्द्र मोहन शास्त्री जी महाराज
बभनौली, लार रोड
देवरिया

श्री रामायण पाण्डेय जी
ग्राम- मथौली, भोरे
गोपालगंज
बिहार





डॉ० रामायण त्रिपाठी जी
नगवाँ, वाराणसी

श्री सूबा पाण्डेय जी
ग्राम- कोरेया
विजयीपुर, गोपालगंज
बिहार





श्री हरिशंकर मिश्र जी
चौमुखा, विजयीपुर
गोपालगंज,
बिहार

श्री राघव प्रसाद मिश्र जी
ग्राम जैतपुरा वैद्य, भोरे
गोपालगंज, बिहार



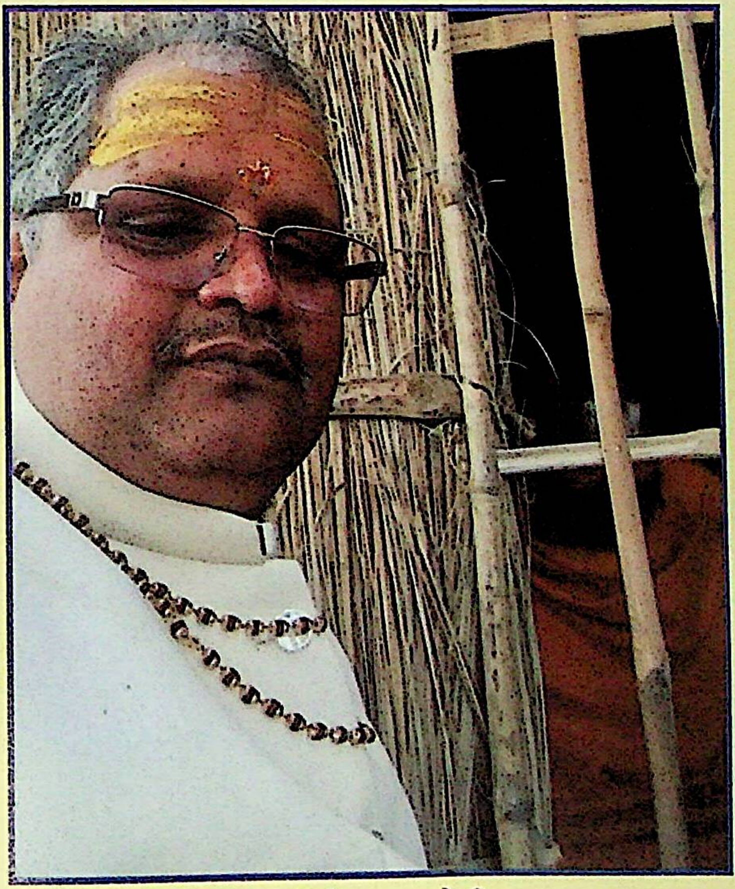
सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ

।।श्रीगणेशाय नमः।।

जननी जनकौवन्दे, पार्वती-परमेश्वरौ

चौपाई-

जेहि जननी शुचि, देवि दुलारी, बसहिं जाहि उर भगति पियारी।
पंडित रामव्यास तेहि ताता, काश्यप गोत्र पवित्र सुहाता।।
रस-शशि-शून्य-अक्षिमिलि जोई, शुभ सम्बतऋषि जनमेउ सोई।
अगहन, सित, तेरसि, रविवारा, जगत शिष्य धारइ अवतारा।।



विशिष्ट सहयोगी

आचार्य पं० श्री शिवपूजन चतुर्वेदी जी

वाराणसी

सहयोग एवं आशीर्वाद/शुभकामनाएँ

दोहा- चतुर्वेदिशिवपूजन, शास्त्रिज्योतिषाचार।
ग्राम बनौली जनपद, तेहि कैमूर बिहार।।
सम्प्रति तारा नगर में, छितुपुर काशीधाम।
लसत वेद मंदिर तहँ जगत शिष्य के नाम।।

चौपाई-
मानस पाठ भजन दिनराती, कलियुग महुँ सतयुग की भाँती।
वैदिक वेद-मन्त्र उच्चरहीं, ब्राह्मण संग हवन नित करहीं।।
शुचि मख-नित्य, सतत मदहीना, अति विनम्र बहु शास्त्र प्रवीना।
दान-पुण्य तेहि सहज सुभाऊ, नहिं अरि कोउ, न कोउ दुराऊ।।
विश्व शान्ति हित उद्यम करहीं, परहित हेतु सतत रत रहहीं।
जगतलाभ हित यतन कराहीं, जगहित हेतु मुदित मन माँहीं।।
बाण-सिन्धु-नभ-नेत्रहि जोई, शुभसम्बत् नवरातर सोई।
सप्तमितिथि शनि उगइ बिचारा, मंगलगीता करउँ प्रचारा।।
एहि लगि राम कृपा जस होई, द्रव्य-दान साधन करुँ सोई।
एहि विधि वचन दिये मोहिं पाहीं, संत हृदय कछु दुरलभ नाहीं।।
विमलकीर्ति यश होउ विताना, प्रभुपद भगति धरम निज माना।
हरषित मन सुधि संत समाजू, अविरल संतति भवन विराजू।।
सत्य होहि यह आशिष वैसे, वृथा होइ गुरुवचन न जैसे।।

दोहा- जब तक रवि, शशि गंग रहें, धरम सनातन सोउ।
यश वितान एहि जगत में, जगत शिष्य के होउ।।
रामलखन सिय संगही, हिय महुँ वसहु कपीश।
आशीरवचन प्रदान करें, मंगल-सुत जगदीश।।

शुभचिंतकः
आचार्य पण्डित जगदीशमिश्रः
एम.ए., ज्योतिष-साहित्यायुर्वेदाचार्यः
प्राचार्यचरः
पंक्तिपावन गुरुकुलमहाविद्यालयः
चौमुखा, विजयीपुर, गोपालगंज, बिहार

डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी
व्याकरणाचार्य, पुराणेतिहासाचार्य (लब्धस्वर्णपदक)
सांख्य-योगाचार्य (लब्दस्वर्णपदक)
अवकाशप्राप्त प्राध्यापक
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

आवास :
"कृष्ण-कदम्ब"
बी 32/52ए. नरिया,
वाराणसी-5

शुभाशंसा

मैंने डॉ० जगदीश जी मिश्र द्वारा लिखित ग्रंथ "मङ्गलगीतागीतम्" को आद्यन्त देखा। मुझे बहुत अच्छा लगा। इस ग्रंथ की जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह कम होगी। मैं डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी, लेखक और ग्रंथ की अविवृद्धि की कामना करता हूँ। गीता के गूढ़ार्थ को सर्वसुलभ बनाने के लिए श्री मिश्र जी का स्तुत्य प्रयास है। मैं ग्रंथ और ग्रंथकार की अभिशंसा कर रहा हूँ।

डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी

शुभकामना

आचार्य पं० जगदीश मिश्र की मेधा से मैं इनके छात्र जीवन से ही परिचित हूँ। ये एक विद्वान पिता के प्रतिभावान पुत्र हैं। काव्य-सृजन की प्रतिभा उनमें नैसर्गिक तो है ही साथ ही काव्यकला उन्हें अपने पिताश्री से विरासत में प्राप्त है।

इनके द्वारा रचित "श्री मङ्गलगीतागीतम्" की पाण्डुलिपि का अवलोकन किया। संस्कृत वाङ्मय के अपूर्व इस आध्यात्मिक ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' का लोकभाषा में समानार्थक पद्यानुवाद विभिन्न छन्दों में करना एक कठिन कार्य है, जो कवि श्री मिश्र ने कर दिखाया है। भोजपुरी में बोलना जितना सरल है, उतना ही कठिन है लिखना और वह भी ऐसे गूढ़ ग्रन्थ का भोजपुरी भाषा में पद्यानुवाद करना। रचना करते समय कवि का विशेष ध्यान इस विन्दु पर है कि कहीं मूल अर्थ में परिवर्तन न हो जाय। इसीलिए कहीं कहीं गूढ़ अर्थों की अभिव्यक्ति हेतु संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस अनूदित ग्रन्थ से भोजपुरी साहित्य का भण्डार समृद्ध होगा तथा भोजपुरी भाषा पाठकों में इसे लोकप्रियता प्राप्त होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। कवि की रचनाशीलता इस दिशा में उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर हो, यही मेरी मङ्गल कामना है।

ब्रजभूषण तिवारी
पूर्व प्रखण्ड शिक्षा पदाधिकारी तथा
उपाध्यक्ष-गोपालगंज जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन
ग्राम - बभनौली
पो० -छितौना (भोरे)
जिला० गोपालगंज, बिहार

दिनांक १५ अगस्त २०१८

प्राक्कथन

इस "श्री मङ्गलगीतागीतम्" नामक पुस्तक को आप समस्त कृष्णप्रेमी सरस-हृदय सुधीजनों के समक्ष उपस्थित करते हुए मुझे महती प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। मैं विश्वेश्वर श्री काशीविश्वनाथ जी को कोटिशः प्रणाम करता हूँ, जिनकी महती कृपा से उनकी प्रियनगरी काशी में ही, अपनी इस आद्याकृति के प्रणयन में प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्राप्त कर सका।

एक दिन मेरे मन में विचार आया कि सन्त तुलसीदास जी ने पुरुषोत्तम भगवान् श्री राम के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से श्री रामचरितमानस की रचना की, जो सम्पूर्ण विश्व में विद्वानों एवं संतों से समादृत हुई तथा सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले पढ़े-अनपढ़े लोगों ने भी अपनाया, कथायें होने लगीं, प्रवचनकर्ता विद्वान, इसमें वर्णित उपदेश से श्रद्धालुओं को लाभान्वित करने लगे और आज सर्वत्र सभी मांगलिक उत्सवों में, चतुर्वर्ग की साधनासिद्धि में यह रामचरितमानस ग्रंथ सहायक बन गया है।

अतः मुझे भी प्रेरणा हुई कि सम्पूर्ण कलावतार परम-ब्रह्म परमेश्वर श्री कृष्ण की शरण ग्रहण करूँ और उनसे सम्बन्धित किसी ग्रंथ का काव्यात्मक चित्रण लोकभाषा में करने का प्रयास करूँ एतदर्थ लोकभाषानुरागियों के आध्यात्मिक ज्ञान तथा उनमें भगवत्प्रेम जागृति के लिए सम्पूर्ण विश्व में समादृत गीताग्रन्थ का लोकभाषा में दोहा, चौपाई, गौरी, छन्दादि छन्दों में सरस, गेय और ज्ञेय पद्यानुवाद करूँ। इस भावना से प्रेरित होकर मैंने इसका शुभारंभ कर दिया जिसका वर्णन इस पुस्तक में कवि-कथनी शीर्षक कविता में पद्यबद्ध है।

मेरा यही प्रयास रहा कि कही भी मूलार्थ बाधित न हो एतदर्थ समानार्थक पद्यानुवाद का प्रयास किया और इसका ध्यान रखा गया कि कहीं भी प्रवाह अवरुद्ध न हो। यदि किसी श्लोकार्थ का पद्यानुवाद दो-या तीन चरणों में ही पूर्ण हो गया है तो सम्बन्धित प्रसंग द्वारा ही चतुर्थ चरण की पूर्ति की गई है।

जैसे उदाहरण के लिए श्रीमद्भागवद्गीता चतुर्थ अध्याय श्लोक २३ का लोकभाषाधारित अनुवाद-

"अनासक्त जन प्रकृतिहि से ही
विचरत रहत सुज्ञानहि में ही।
ब्रह्मलीन तेहिके सब करमा

एहि विधि हरि समुद्भावत धरमा।"

यह चतुर्थपद, पदपूर्ति के लिए उसी सन्दर्भ से लिया गया है इत्यादि। पुनश्च, इस रचना में तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग, शाब्दबोध और भावव्यञ्जना के लिए किया गया है। दार्शनिक एवं क्लिष्ट शब्दों को फुट प्रिंट में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। छन्दशास्त्र में वार्णिक और मात्रिक छंदों का वर्णन है। श्रीवाल्मीकीय रामायण में १३, श्रीमद्भागवत में २५ , महाभारत में १८, रघुवंश में लगभग १८ छन्दों का प्रयोग हुआ है। तुलसीकृत श्री रामचरितमानस में दोहा, चौपाई, छप्पय, सोरठा छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक "श्रीमंगलगीता गीतम्" में दोहा, चौपाई, गौरी और छप्पय छन्दों का प्रयोग हुआ है।

इस पुस्तक का नामकरण- इस पुस्तक का नाम "श्रीमंगलगीतागीतम्" है जिसमें 'श्री' कुलपूज्या परमाराध्या पीताम्बरा देवी जी, 'मङ्गल'-मङ्गलवाची श्री गणेशजी अथवा मेरे पूज्य जनक महकवि श्रीमङ्गलजी तथा 'गीतागीतम्' - श्रीगीताजी का अनुगायन, भजन, काव्यात्मक वर्णन आदि है। मङ्गलाचरण में दोहा और चौपाइयों में रचित श्रीबगलार्धशतकम् साथ ही शिवशक्ति स्तुति रचित है जो श्री सिद्धान्तशिखामणि नामक ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद के श्लोक १-१२ तक का लोकभाषाधारित दोहा और चौपाइयों में मूल का अक्षरसः अनुवाद है। एक बात और मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैंने गीता पढ़ी, अनुवाद किया किन्तु इसमें वर्णित दार्शनिक उपदेश मन को भ्रमित कर देते हैं। मेरी समझ से ईश्वर की कृपा के बिना इसे कोई पूर्णतः नहीं समझ सकता है। इसी भावना से प्रेरित होकर इस गीता ग्रन्थ में वर्णित ज्ञान-वैभव को नमस्कार करते हुए मैंने लोकभाषा में एक रचना प्रस्तुत की है, जिसका शीर्षक है 'बताईं कइसे'। मेरा यह व्यक्तिगत विचार है।

इस पुस्तक का अत्यन्त सावधानी से अक्षरसः अवलोकन करते हुए मुख्यतः श्री ब्रजभूषण तिवारी जी, डॉ० अर्जुन तिवारी जी, डॉ० रमाकान्त पाण्डेय जी, पूर्व प्राचार्य गोयनका महाविद्यालय, भदैनी, काशी, श्री सुरेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव जी पूर्व राजपत्रित कर्मचारी तथा मेरे पुत्र मनोज कुमार मिश्र जी का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ है।

प्रेरणास्त्रोत- श्री अक्षयवर दीक्षित जी ग्राम-दीक्षितौली-हुस्सेपुर भोरे, गोपालगंज, श्री जगतनारायण सिंहजी (मेरे शिक्षा गुरु), भोरे तथा मेरे दूसरे शिक्षागुरु श्री ब्रजभूषण तिवारी जी ग्राम-बभनौली, पत्रालय-छितौना, भोरे,

गोपालगंज, बिहार, पूर्व प्रखण्ड शिक्षा पदाधिकारी, गोपालगंज तथा संस्थापक सचिव, 'बौद्धिक विकासमण्डल', भोरे, गोपालगंज (बिहार) के तत्वाधान में सन् १९५५ई० से ही साहित्य सम्मेलन, कवि-सम्मेलन, विद्वानों और कवियों को सम्मानित करने की सुदृढ़ नींव पड़ गई। और अद्यावधि निर्बाध रूप से इसका पालन हो रहा है। इसी मंच से एक सम्मेलन में १९७३ में मेरे पिता जी को सम्मानित किया गया था। इसके लिए मैं आभार व्यक्त करता हूँ। मेरे पिता आचार्य पं० श्री शिवमङ्गल मिश्र 'मङ्गल' जी को इन्हीं लोगों से प्रेरणा मिली और इसका परिणाम यह हुआ कि पिताजी ने कालिदास प्रणीत रघुवंश महाकाव्य के सम्पूर्ण १९ सर्गों का समश्लोकी हिन्दी पद्यानुवाद कर डाला जो अपने आप में देश की पहली रचना है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान दिल्ली से भी हुआ। इसी प्रकार के सम्मेलन से प्रभावित होकर अनेक कवियों का प्रादुर्भाव हुआ। जिनमें श्री लक्ष्मण पाठक 'प्रदीप जी', श्री अञ्जन जी, श्री कुबेरनाथ मिश्र जी जैतपुरा, भोरे तथा श्री कुबेरनाथ मिश्र जी 'विचित्र' भाटपार रानी, देवरिया, लोकभाषा के जनप्रिय कवि हुए हैं। इन सभी के प्रति मेरा सम्मान है। इन्हीं विद्वानों से इस क्षेत्र में शिक्षा और काव्यकला का सम्मानवर्धन हुआ। इन्हीं लोगों से मुझे भी प्रेरणा मिली, जिसका परिणाम यह प्रस्तुत पुस्तक 'मङ्गलगीतागीतम्' है। मेरे अन्य प्रकाशित होने वाले ग्रंथों में 'मङ्गलमुरलीमाधवम्'– श्रीमद्भागवद् के विभिन्न ललित एवं प्रिय कथानकों का विभिन्न गेय छन्दों में अनुवाद है तथा 'मेघदूतम्' समश्लोकी पद्यानुवाद इत्यादि हैं।

डॉ० अर्जुन तिवारी जी मेरे पिताजी के अनन्य विद्वान् मित्र और साहित्यप्रेमी हैं। इन्होंने बहुत सावधानी से इस पुस्तक का प्रूफ देखा, पढ़ा और आवश्यक संशोधन किया। जिसके लिए उन्हें मेरे अनेकशः नमन। श्री सुरेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव जी पूर्व राजपत्रित अधिकारी एवं मेरे पिताजी के प्रियशिष्य तथा गीताप्रेमी हैं। इन्होंने सावधानी से प्रूफरीडिंग करते हुए अपना बौद्धिक सहयोग किया जिसके लिए उन्हें तथा उनके समस्त परिवार के लिए मेरा हार्दिक शुभाशीर्वाद।

मेरे चिरञ्जीवि सुपुत्र श्री मनोज कुमार मिश्रजी को अपने पितामह पूर्वोक्त श्री कवि मंगल जी से पूर्णसंस्कार, काव्यकला, नैसर्गिक उर्वरक मस्तिष्क प्राप्त है। इन्होंने सूक्ष्म अध्ययन और संशोधन से इस पुस्तक की शोभा बढ़ाई जिसके लिए उनको तथा उनकी वंश-परंपरा के लिए मेरी मंगलमयी दीर्घायुष्य प्राप्त जीवन की

शुभकामना एवं शुभाशीर्वाद।

वर्तमान प्राचार्य एवं समस्त महाविद्यालय परिवार, पक्तिपावन गुरुकुल महाविद्यालय, चौमुखा, विजयीपुर, गोपालगंज तथा दूसरे जिन-जिन महानुभावों ने जिस प्रकार का समय-समय से सहयोग किया है, उसके लिए मैं सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ। इस पुस्तक के प्रकाशन में अत्यन्त आदरणीय और सार्थक सहयोग करने के लिए डॉ० श्री शिवपूजन चतुर्वेदी जी (जगत शिष्य) छित्तुपुर, वाराणसी का हृदय से आभारी हूँ, जिनकी उदारतापूर्ण सहायता से यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी और इसे निःशुल्क विद्वान गीतानुरागियों को उपलब्ध कराने का प्रयास है। मैं इस महान व्यक्तित्व जगत शिष्य और उनके सम्पूर्ण परिवार के लिए मंगलमय दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

यह अनुगायन भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से ही सम्पन्न हो सका एतदर्थ श्रीकृष्ण जी के पदाम्बुजों में मेरे शतशत नमन हैं।

श्री गौरीशंकर जी जो संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी के टंकण में अत्यन्त प्रवीण हैं, उनके लिए मेरा साधुवाद तथा प्रेस श्री महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी के संचालक रोहित जैन को अल्पावधि में इस पुस्तक को प्रस्तुत करने के लिए भी साधुवाद।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अत्यन्त सावधानी से विचार किया गया है तथा उच्चकोटि के पूर्वोक्त विद्वानों से इसका अक्षरसः संशोधन सहित बौद्धिक सहयोग प्राप्त किया गया है, फिर भी मानव मस्तिष्कजनित त्रुटियाँ सम्भावित हैं। एतदर्थ "गुणैकपक्षपाती" पाठकों और सुधीजनों से आशा करता हूँ कि इसके लिए मुझे क्षमा कर देंगे। क्योंकि-

दुर्जन हँसहिं करहिं अपमाना। सुजन सुधारहिं सब गुणखाना।।
परजन दोष ताड़ समजोई। बुधगन मानहिं तिल सम सोई।।
पुनश्च विद्वांस एव जानन्ति विदुषः परिश्रमम्-शमिति।

विदुषांवदः

मंगलात्मजः जगदीशमिश्रः

।।श्रीरस्तु।।

समर्पणम्

उपाध्यायान्दशाचार्य, आचार्याणां शतंपिता।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।

(मनुस्मृति)

अध्यापकदशगुनगुरु होहीं। गुरुशतगुन महिमा पितु कोही।।
तात सहसगुन जननी होई। महिमा मनुहिं बखानत सोई।।
शिवसमतात गौरिसममाता। नावउँ सिर तेहि पदजलजाता।।
मंगलतात मात अतिराजी। तेहि करकंज ई ग्रंथ विराजी।।
होहिं तुष्ट कवितात हमारे। पुनि जननी कुलपितरहिं सारे।।
पुनि सब गुरुपद नावउँ माथा। द्रवहु प्रसन्न होइ यदुनाथा।।

तेहि वंशज जगदीश हम, सहित सकल परिवार।
जोइ पढ़ितोषहिं तेहि प्रति प्रकटउँ निज आभार।।

कृष्णभगतमन यदि उगे, थोंरहु भगतिविचार।
निश्चय तब हम मानिहौं, सब श्रम सफल हमार।।

विद्वद्वशंवदः

—श्रीमङ्गलात्मजः जगदीशमिश्रः

ॐ श्री परमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

प्रथमोऽध्याय:

कुरुक्षेत्र रण-भूमि में सैन्य परीक्षण

धृतराष्ट्रउवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे
समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव
किमकुर्वत सञ्जय।।१।।

सञ्जय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डावनीकं
व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसङ्गम्य
राजा वचनमब्रवीत्।।२।।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणा-
माचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण
तव शिष्येण धीमता।।३।।

ॐ श्री परमात्मने नमः

श्रीमङ्गलगीतागीतम्

प्रथम अध्याय

सन्दर्भ– *(सेना निरीक्षण)*

जेहि, रणभूमि, रहेउ भगवन्ता, जगपालक प्रभु कृषन अनन्ता।
धर्मक्षेत्र एहि कारण होई, कुरुक्षेत्र, जग जानइ जोई।
धृत[१] संजय महुँ होइ जो बाता, सोई गीता दर्शन कहलाता।
सैन्य परीक्षण, रणमहुँ जोई, एहि अध्याय कथित सब सोई।

धृतराष्ट्र कहलें

दोहा– धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में,
युद्ध हेतु बिटुराइ।
पाण्डव कुरुसुत का किये,
संजय देउ बताइ।।१।।

संजय कहलें

चौपाई– पाण्डव कटक[२]–व्यूह की रेखा,
साज–बाज, रण–कौशल देखा।
दुर्योधन तब बात बनाई,
कहन लगा निजगुरु पहिं जाई।।२।।

पाण्डव–कटक सैन्यबल भारी,
द्रुपदपुत्र मिलि सबहि बिचारी।
गुरुवर! देखहुँ आँखिन सारी,
पाण्डव सेनन की तइयारी।।३।।

---

१. धृत= धृतराष्ट्र। २. कटक = सेना।

अत्र शूरा महेष्वासा
भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च
द्रुपदश्च महारथः।।४।।

धृष्टकेतुश्चेकितानः
काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च
शैब्यश्च नरपुङ्गवः।।५।।

युधामन्युश्च विक्रान्त
उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च
सर्व एव महारथाः।।६।।

अस्माकं तु विशिष्टा
ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य
संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते।।७।।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च
कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च
सौमदत्तिस्तथैव च।।८।।

द्रुपद, विराट रथी युयुधाना,
युद्ध विशारद वीरहि नाना।
भीम, पार्थ सम युद्धक भारी,
सकहिं शत्रुसेनन संहारी।।४।।

छन्द–छप्पय–

धृतकेतु अरु चेकितान पुनि,
पुरजीत कुन्तीभोज ओ।
सँग शैव्य काशीराज तहँ,
सब युद्ध में निषणात जो।।५।।

युधमन्यु भट[१] उतमौज सँग,,
सौभद्र द्रौपद जुटि सभे।
रणवीर सगरे–वीर मिलि,
रणजीति सकहीं जे अबे।।६।।

पर, विप्र गुरु! हम तोहिसे,
निज सैन्य साज विधानके,
कहन चाहउँ जो सबहि,
सकुशल निबाहें–काम के।।७।।

निज आपही, पुनि करण,
कृप, अश्वत्थ भीष्म महान यों,
तहँ सोमसुत भूरीश्रवा,
औ कर्ण भी बलवान त्यों।।८।।

---

१. भट = योद्धा, वीर।

अन्ये च बहवः शूरा
मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः
सर्वे युद्धविशारदाः।।९।।

अपर्याप्तं तदस्माकं
बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां
बलं भीमाभिरक्षितम्।।१०।।

अयनेषु च सर्वेषु
यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु
भवन्तः सर्व एव हि।।११।

तस्य सञ्जनयन्हर्षं
कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः
शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्।।१२।।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च
पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त
स शब्दस्तुमुलोऽभवत्।।१३।।

पुनि भट्ट–बहु मम हेतु जेइ,
जी त्याग देइ हमरे लिए।
तइयार सब कइ भाँति के,
हथियार से हैं सब सजे।।९।।

चौपाई–

अमित शक्ति हमरी सब भाँती,
करहिं भीष्म रक्षा दिन–राती।
सिमित[१] शक्ति बल पाण्डव के ही,
हों कितनहुँ बलवान भले ही।।१०।।

निज–निज विन्दू[२] लेहु सम्हारी,
भीष्म पितामह की रखवारी।
एक साथ एहिविधि कर सबहीं,
दुरयोधन गुरु से कह तबहीं।।११।।

तब कुरु वंश वृद्ध परतापी,
गरजन किये सिंह की भाँती।
भीष्मपितामह शंख बजाये,
दुरयोधन मन अति हरषाये।।१२।।

शंख, बिगुल तुरही, सिंग साथे,
ढोल–मृदंग बजन सब लागे।
गर्जन–तर्जन भयउ विशाला,
शब्द–तुमुल उपजा अति हाला[२]।।१३।।

---

१. सिमित = सीमित । विन्दू = मोरचा। २. हाला = शोर।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते
महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव
दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः।।१४।।

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो
देवदत्तं धनंजयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं
भीमकर्मा वृकोदरः।।१५।।

अनन्तविजयं राजा
कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च
सुघोषमणिपुष्पकौ ।।१६।।

काश्यश्च परमेष्वासः
शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च
सात्यकिश्चापराजितः ।।१७।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च
सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः
शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक्।।१८।।

श्वेत-अश्वकर्षित रथ में ही,
कृष्ण पार्थ बैठे मिलिके ही।
दिव्यशंख ध्वनि अर्जुन कीना,
होहिं शत्रुदल जेहि बलहीना।।१४।।

दोहा-

पाञ्चजन्य हृषिकेश औ,
देवदत्त-गुडकेश ।
भीम पौण्ड्र-शंख ध्वनी,
भइ भयकारी तेज।।१५।।

चौपाई-

शंख अनन्त विजय से घोषा,
किये युधिष्ठिर मन अति रोषा।
नकुलहि शंख-सुघोष बजाये,
मणिपुष्पक सहदेव सुनाये।।१६।।

काशीराज महाधनुधारी,
वीर शिखण्डिहि सात्यकि भारी।
धृष्टद्युम्न, विरट सब वीरा,
शंखनाद करि किए अधीरा।।१७।।

दोहा-

द्रौपदि-पुत्र, द्रुपद अरू,
सौभद्रासुत वीर।
निज-निज शंख बजाइके,
अरिदल करहिं अधीर।।१८।।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां
हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव
तुमुलो व्यनुनादयन्।।१९।।

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा
धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते
धनुरुद्यम्य पाण्डवः।।२०।।

हृषीकेशं तदा वाक्य-
मिदमाह महीपते।
अर्जुन उवाच
सेनयोरुभयोर्मध्ये
रथं स्थापय मेऽच्युत।।२१।।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं
योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्य-
मस्मिन्रणसमुद्यमे ।।२२।।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं
य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धे-
र्युद्धे प्रियचिकीर्षवः।।२३।।

शंख–ध्वनि–प्रतिध्वनि मिलि,
गूँजी भू–नभ बीच।
वीर पुत्र धृतराष्ट्र के
हृदय विदारहिं[१] खींच।।१९।।

चौपाईं–

कपि अंकित ध्वज स्यन्दन जाके,
बइठेउ पार्थ धनुष धरि हाथे।
राजन्! कुरुसुत, रण महुँ देखी,
कह अर्जुन हरि वचन विशेखी।।२०।।

अर्जुन कहलें

दोउ–दल मध्य करहु रथ मेरे,
प्रभु! देखउँ अरिभट बहुतेरे।
जेहि संग रण महुँ होइ लड़ाई,
तेहि पौरुष[२] परिखहुँ[३] पहिं[४] जाई।।२१।।

केहि संग युद्ध होइ अति घोरा,
जानन चहत सबहि मन मोरा।
एहि विधि पार्थ वचन सुनि काना,
रथ लाये रणमहुँ भगवाना।।२२।।

दोहा–

दुर्योधन दुर्बुद्धि सह,
रण महुँ भट जोइ आइ।
तेहि के हम देखन चहें,
समर भूमि महुँ जाइ।।२३।।

१. विदीर्ण करना, २. पुरुषार्थ, ३. जाँच करूँ, पहँचानूं, ४. पास में (नजदीक से)।

सञ्जय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो
गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये
स्थापयित्वा रथोत्तमम्।।२४।।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः
सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान्-
समवेतान्कुरूनिति ।।२५।।

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः
पितॄनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄ-
न्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।।२६।।

श्वशुरान्सुहृदश्चैव
सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः
सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।।२७।।

अर्जुन उवाच

कृपया परयाविष्टो
विषीदन्निदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण
युयुत्सुं समुपस्थितम्।।२८।।

संजय कहलें

चौपाई- संजय एहि विधि बोलेउ तबहीं,
सूनहु[१] तात वचन मम अबहीं।
भारत! सुनि यह पारथ बानी,
हरि स्यन्दन दोउ बीचहिं आनी।।२४।।

द्रोण, भीष्म सब नृपवर आगे,
पारथ! देख कटक-कुरु राजे।
एकहि सँग जुटेउ नृप सारे,
सारथि हरि यह वचन उचारे।।२५।।

दोउ दल सैनिक बीचहि देखा,
पारथ, निज-गुरु-भाई-भतीजा।
मातुल-ताउ-पितामह देखी,
पुत्र, पौत्र, सखि[२] सुहृद विशेखी।।२६।।

दोहा-
मित्र, बन्धु सब देखि के,
स्वजन वृद्ध, बड़ लोग।
बोले अर्जुन दुखित मना,
दया करुण मन शोक।।२७।।

अर्जुन कहलें

छन्द छप्पय- हे कृष्ण! कम्पित गात, मुख,
सुख जात हमरे है सभी।
वर, मित्र लखि रण बीच महुँ,
अति दुसह दुख हमरे अभी।।२८।।

---

१. सूनहु = सुनहु। २. सखि = मित्र।

सीदन्ति मम गात्राणि
मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे
रोमहर्षश्च जायते।।२९।।

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्ता-
त्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं
भ्रमतीव च मे मनः।।३०।।

निमित्तानि च पश्यामि
विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि
हत्वा स्वजनमाहवे।।३१।।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण
न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द
किं भोगैर्जीवितेन वा।।३२।।

येषामर्थे काङ्क्षितं नो
राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे
प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।।३३।।

तन-कम्प थर-थर रोंगटे,
हमरे खड़े सब होइ रहे।
गाण्डीव धनु कर-सरक अब,
सब चाम तन के जलि रहे।।२९।।

चौपाई-

नहिं समरथ अब ठहरउँ थोरे,
भ्रमित बुद्धि शिर चक्कर मोरे।
सब विपरीतहि देखउँ आँखी,
सबहि अमंगल हरि! एहिभाँती।।३०।।

कृष्ण सुनहु यह वचन हमारे,
नहिं कछु लाभ स्वजन बध मारे।
विजय, राज-सुख, चाहउँ नाहीं,
यह विचार उपजइ मन माहीं।।३१।।

का सुख जीवन लागहि भोगा,
कौनहि लाभ होइ, केहि लोगा।
केशव! काहे करउँ लड़ाई,
एहि क्षण नहिं कछु बुद्धि समाई।।३२।।

दोहा-

जीवन-धन-सब छोड़िके,
आइ गये रण माँहि।
गुरु-सुत-पितर - पितामहूँ,
जेहि, जीवन प्रिय नाहिं।।३३।।

आचार्याः पितरः पुत्रा-
स्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः
श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।।३४।।

एतान्न हन्तुमिच्छामि
घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य
हेतोः किं नु महीकृते।।३५।।

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः
का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मा-
न्हत्वैतानाततायिनः ।।३६।।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं
धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा
सुखिनः स्याम माधव।।३७।।

यद्यप्येते न पश्यन्ति
लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं
मित्रद्रोहे च पातकम्।।३८।।

चौपाई-

मामा, स्वसुर पौत्र अरु शाले,
कारन कवन इनहिं वधि डालें।
मधुसूदन! सम्बन्धिन सारे,
का फल मिलहि इनहि के मारे।।३४।।

तीनहु लोक राज भलु होई,
भूमिहि बात न पूछहु कोई।
एहि सँग हम नहिं करउँ लड़ाई,
कवनहि हरष हमहि मिलि जाई।।३५।।

केशव! कवनहिं सुख मोहिं होई,
कुरु-सुत मारि प्रीति नहिं कोई।
आततायि एहि मारउँ जोई,
केवल पापहि-पापहि होई।।३६।।

सबहिं बन्धु प्रिय माधव! मेरे,
हम नहिं योग्य बधउँ इन केरे।
कौन मोद मोहिं मिलिहँहिं एही
मारउँ निज परिवारन के ही।।३७।।

लोभ-ग्रसित मति-मन्द सभी ही,
कुल विनाश नहिं धरम कभी भी।
मित्र-द्रोह प्रियजन सब केही,
अति[१]-पातक नहिं देखहिं एही।।३८।।

---

१. अति पातक = घोर पाप,

कथं न ज्ञेयमस्माभिः
पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं
प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ।।३९।।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति
कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्न-
मधर्मोऽभिभवत्युत ।।४०।।

अधर्माभिभवात्कृष्ण
प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय
जायते वर्णसङ्करः।।४१।।

सङ्करो नरकायैव
कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां
लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।।४२।।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां
वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः
कुलधर्माश्च शाश्वताः।।४३।।

कुल विनाश कलमस[1] हम जानी,
कस नहिं दूर हटहुँ अस जानी।
कहहि पार्थ एहि विधि हरि से ही,
कस प्रभु रणहिं लगावत एही।।३९।।

कुल के धरम सनातन जोई,
कुलके नाश, नष्ट सब होई।
धर्मनाश कुल पाप बढ़ेही,
नहिं कछु होइहि लाभ लड़ेही।।४०।।

केशव! जबहिं पाप बढ़ि आई,
दूषित नारि सबहिं होइ जाई।
विष्णु! नारि दूषित जब होई,
संकर-वरण वंश सब सोई।।४१।।

कुल अरु कुलघातिन मिलि दोऊ,
संकर वरण नरक पथ होऊ।
श्राद्ध, पिण्ड-तर्पण एहि करहीं,
तब सब पितर अधोगति परहीं।।४२।।

संकर कारक दोषहिं सेही,
नाशे जाति धरम सब एही।
कहइ पार्थ, प्रभु से सब ऐसे,
संकरवरण विनाशक जैसे।।४३।।

---

१. कलमस = कल्मष= मैल, पाप, एक नरक।

उत्सन्नकुलधर्माणां
मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो
भवतीत्यनुशुश्रुम ।।४४।।

अहो बत महत्पापं
कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन
हन्तुं स्वजनमुद्यताः।।४५।।

यदि मामप्रतीकार-
मशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्-
तन्मे क्षेमतरं भवेत्।।४६।।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वाऽर्जुनः सङ्ख्ये
रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं
शोकसंविग्नमानसः ।।४७।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः।।

काल अनन्त नरक बसि सोई,
नष्ट धरम कुल एहिविधि जोई।
केशव! हमहिं सुनत अस आई,
वरन दोष जब कुलहि समाई।।४४।।

हा! अचरज यह कित बड़ मानी,
पाप करम करिहउँ हम ठानी।
राजभोग, सुख, पावन केही,
हम ततपर परिवार बधेही।।४५।।

संजय कहलें

चौपाई– शस्त्रहीन मोंहि कुरु सुत मारें,
रण–प्रतिरोध भलहिं हम टारें।
एहि विधि क्षेम[१] परम निज जानी,
निज कुलघात उचित नहिं मानी।।४६।।

संजय ने कहा

दोहा–

कह संजय रणभूमि में,
अस कहि धनु–शर छोड़ि।
अर्जुन आतुर शोक से,
रथ - बइठे मुँह मोड़ि।।४७।।

निचोड़

बहु भट–भूरि प्रसंशा बरनी, दोउ दल निज–निज बरनइ करनी।
सैन्य परीक्षण रण महुँ जइसे, एहि मंगलगीता कह वइसे।।

☆

---

१. क्षेम – कुशल, भलाई।

द्वितीयोऽध्यायः

सञ्जय उवाच

तं तथा कृपयाविष्ट-
मश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्य-
मुवाच मधुसूदनः।।१।।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं
विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्य-
मकीर्तिकरमर्जुन ।।२।।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ
नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं
त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।३।।

द्वितीय अध्याय

सांख्य योग

सन्दर्भ-

भौतिक-तन अरु आतमा-सम्बन्धित सद्ज्ञान।
कहते इस अध्याय में परमेश्वर भगवान।।

संजय ने कहा

दोहा- शोक युक्त, जल, नेत्र में,
करुणा से अभिभूत।
अर्जुन देखत कहन लगे,
मधुसूदन अच्यूत।।१।।

श्री भगवान जी कहनीं

चौपाई- महामोह केहि विधि मन आई,
एहि क्षण अर्जुन! नाहिं सुहाई।
सुख सम्मान सरग यश नाशे,
एहि नहिं आर्य होई हरि भाषे[१]।।२।।

नहिं बनु क्लीब पार्थ! रण माहीं,
कायरता रण शोभत नाहीं।
तज हृदि क्षुद्र कृपणता हासी[२],
युद्ध हेतु तुम उठु अरि-नाशी।।३।।

---

१. भाषे = कहा, २. हासी = हास्यता

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये
द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि
पूजार्हावरिसूदन ।।४।।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्।।५।।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।।६।।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।७।।

अर्जुन कहलें

अर्जुन कह केहि विधि मधुसूदन,
भीष्म, द्रोण मारउँ अरिसूदन।
पूजनीय गुरु हमरे एही,
केहि विधि बाँण चलावउँ तेही।।४।।

छन्द–छप्पय–
गुरुवरश्रेष्ठ, पूज्य–जन मारी,
जीवित रहउँ कुकर्म इ भारी।
भलु भीक्षा माँगिहौं जनमाहीं,
जतनकरउ एहितन के पाहीं।।

केहि कारण मारउँ गुरु कोही,
राज लागि लोलुप कस होहीं
नहिं चाहउँ भुवि राजहि एही,
जो गुरुजन के रुधिर सनही।।५।।

जीतउँ तेहि भलु ते मोहिं जीते,
नहिं जानउँ केहि उचित सभीते।
तेहि के मारि न जीवन कामा,
कुरुसुत सबहिं करहिं संग्रामा।।६।।

कायरता वश, ग्रसित भयेही,
करतब आपन देखि सभेही।
निज धीरज एहि क्षण हम छोड़ी,
जावउँ कवन ठाँव मुँह मोड़ी।।

शरणागत गुरु आपहि केही,
हित उपदेश बताउ हमेहीं।
निरणय सब प्रभु आपहि करहू,
का अति उचित मोहि सब कहहू।।७।।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धम्
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।।८।।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं
गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्द-
मुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।।९।।

तमुवाच हृषीकेशः
प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये
विषीदन्तमिदं वचः।।१०।।

श्री भगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं
प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च
नानुशोचन्ति पण्डिताः।।११।।

सम्पति सहित सबहि सुरलोका,
राज सकल साधन सुख भोगा।
अरिविहीन भुविराज मिलेही,
नहिं चाहउँ हम वैभव एही।।८।।

(सन्दर्भ) दोहा–

युद्ध भूमि घटना सभी,
संजय कहेउ बुझाइ।
कौरवनृपधृतराष्ट्र को,
गति–विधि सब समुझाइ।।

संजय कहलें

दोहा–
गुडाकेश अरिनाशक
हरि से बोले बात।
गोविन! अब मैं ना लड़ूँ,
होइ गये चुपचाप।।९।।

दोउ दल बीचहिं भारत!
शोक मगन गुड केश–
से हरि अस कहने लगे–
मुदित–मना हृषिकेश।।१०।।

श्री भगवानजी कहनीं

चौपाई–
प्रज्ञावचन कहत करि शोका,
जो अशोच्य नहिं सोचन योगा।
नहिं जीवित, नहिं मृत के हेतू,
बुध जन करहिं न, शोक, अशोचू।।११।।

न त्वेवाहं जातु नासं
न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः
सर्वे वयमतः परम्।।१२।।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे
कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्ति-
र्धीरस्तत्र न मुह्यति।।१३।।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय
शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्या-
स्तांस्तितिक्षस्व भारत।।१४।।

यं हि न व्यथयन्त्येते
पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं
सोऽमृतत्वाय कल्पते।।१५।।

नासतो विद्यते भावो
नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्त-
स्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ।।१६।।

मैं ना रहउँ, कबहुँ यह नाहीं,
या तुम या नृप नहिं जग माहीं।
पुनि नहिं होइ कबहुँ यह आगे,
एहि विधि हरि समुझावन लागे।।१२।।

जेहि विधि बालपना तरुणाई,
तब आवे तन सबहि बुढ़ाई।
तेहि-विधि जीव पाइ तनु अइसे,
नहिं नर-धीर-विमोहित वइसे।।१३।।

दोहा-

शीत, उष्ण सुख दुख सदा,
इन्द्रिय भोगहि जान।
आवत जात सतत सभी,
कुन्तिपुत्र! यह मान।।१४।।

चौपाई-

नरवर! वह नर, वर नित होई,
सुख दुःख महुँ नहिं विचलहि जोई।
एहि विधि, प्रभु पारथ-समुझाये,
धीर-पुरुष लक्षण बतलाये।।१५।।

यह भौतिक तन चिरनहिं कबहूँ,
पर यह जीव अचल रह सबहूँ।
यह निषकरष तत्वविद् जाने,
सत, अरु असत् तत्व दोउ माने।।१६।।

---

१. तत्त्व=दर्शनशास्त्र में छत्तिस तत्त्व वर्णित हैं जो इस दूसरे अध्याय के अन्त में पद्यबद्ध हैं।

अविनाशि तु तद्विद्धि
येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य
न कश्चित्कर्तुमर्हति।।१७।।

अन्तवन्त इमे देहा
नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य
तस्माद्युध्यस्व भारत।।१८।।

य एनं वेत्ति हन्तारं
यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो
नायं हन्ति न हन्यते।।१९।।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।२०।।

वेदाविनाशिनं नित्यं
य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ
कं घातयति हन्ति कम्।।२१।।

अविचल जीव वसत तन जोई,
थिर-चिर, नित्य अनश्वर होई।
जीव विनष्ट होत नहिं सोई,
तेहि नाशे समरथ नहिं कोई।।१७।।

भौतिक तन यह सहज विनाशी,
जीव अचिन्त्य सदा अविनाशी।
रहसि[१] जानि यह करउ लड़ाई,
हे पारथ! सब सोच विहाई।।१८।।

छप्पय-(गौरी)

मारे, मरे, यह जीव सदा,
यह सोचत बुद्धि-विहीनहि दोऊ।
मरे नहिं जीव न मारे कबो,
यह शाश्वत सत्य कहे सब कोऊ।।१९।।

न मरा न हुआ, यह जीव कबो,
न हुआ ई कभी न कभी यह होई।
अमर्त्य, अजन्म सदा ई पुरातन,
तनकेहि हते, न हताहत सोई।।२०।।

नहिं नाश, न जन्म, विकार नहीं,
नित्यहि[२] जीव सदा यह होई।
यह जानत बात भला कइसे,
जन मारहि या मरवा सक कोई।।२१।।

१. रहसि = रहस्य, २. नित्यहि = नित्य-शाश्वत।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।२२।।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि
नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो
न शोषयति मारुतः।।२३।।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽय-
मक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणु-
रचलोऽयं सनातनः।२४।।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽय-
मविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं
नानुशोचितुमर्हसि ।।२५।।

अथ चैनं नित्यजातं
नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो
नैवं शोचितुमर्हसि।।२६।।

चौपाई–

जेहि विधि वसन पुरातन होई,
त्यागि नवीन, धरे सब कोई।
तेहि विधि जीव पुरातन काया,
छोड़िहि नूतन तन वह पाया।।२२।।

काटहि शस्त्र कबहुँ नहिं एही
अगिनि जलाइ सकइ नहिं तेही।
नहिं एहि नीर गीलकरि पाई,
अनिल सकहि नहिं जीव सुखाई।।२३।।

टूटइ कबहुँ न घुलि जलपाई,
मरुत सकहिं नहिं एहि सुखाई।
थिर, अविकारि सदा सम होई
व्यापत सबहिं नित्य जड़ सोई।।२४।।

चौपाई–

नहिं कोई देखइ, सोचहि नाहीं,
विन विकार यह जीव कहाहीं।
करहु न शोक मनहिं अस जानी,
नशवर यह तन निशिचय मानी।।२५।।

पुनि–पुनि जनम जीव के होई,
मृत्यु ताहि विधि पुनि पुनि होई।
यदि महबाहु तू मानहु अइसे,
नहिं तुम योग्य शोक के तइसे।।२६।।

१. थिर=सनातन, सदा समान रहने वाला।२. अविकारि= अपरिवर्तनीय।३. सम=एकसमान।
४. व्यापत=सर्वव्यापी। ५. नित्य=शाश्वत। ६. जड़=अचल।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु-
र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे
न त्वं शोचितुमर्हसि।।२७।।

अव्यक्तादीनि भूतानि
व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव
तत्र का परिदेवना।।२८।।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।२९।।

देही नित्यमवध्योऽयं
देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि
न त्वं शोचितुमर्हसि।।३०।।

जोइ जनमहिं तेहि मृत्युहि आई,
पुनि-मृत जनम सुनिश्चित पाई।
बिन विकल्प यह नित नित होई,
नहिं अस शोक करहु तुम कोई।।२७।।

जन्महिं पूर्व प्रकट नहिं कोई,
मृत्यु परे पुनि ओहि विधि होई।
प्रकट जीव यह बीचहि में हीं,
अर्जुन तब कस शोक करे ही।।२८।।

दोहा-

चकित होइ महनीय कोई,
नर देखे एहि भाँति।
कोउ अचरज करि कथन करे,
कोउ सुनि अचरज जानि।

अधिकारी नर आहि विधि,
सुनि निज मति अनुसार।
सुनकर भी नहिं जन कोउ,
जानहिं जीव विचार।।२९।।

जीव अवध्य सदा तन एही,
रहत-गुप्त तन महुँ सब केही।
करहु शोक जनि जीवहि पाहीं,
भारत! शोक योग्य तुम नाहीं।।३०।।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य
न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्य-
त्क्षत्रियस्य न विद्यते।।३१।।

यदृच्छया चोपपन्नं
स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ
लभन्ते युद्धमीदृशम्।।३२।।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं
संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च
हित्वा पापमवाप्स्यसि।।३३।।

अकीर्तिं चापि भूतानि
कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्ति-
र्मरणादतिरिच्यते ।।३४।।

भयाद्रणादुपरतं
मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो
भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।३५।।

देखहु क्षात्र धर्म निज ऊँचा,
युद्ध विमुख अपकरम न दूजा।
करहु न भय थोरहु मन माहीं,
रण से उच्च धरम कोउ नाहीं।।३१।।

स्वर्ग द्वार रण खोलहि आपे,
क्षत्रिय-सुलभ भाग्य परतापे।
एहि विधि प्रभु पारथ समझावा,
क्षत्रिय धरम-स्वरूप बतावा।।३२।।

यदि नहिं धर्म-युद्ध यह करही,
कीर्ति गँवाइ नरक महुँ परही।
लड़हुँ न यदि निज धर्म विहाई,
कीर्ति विहाइ पाप तुम पाई।।३३।।

सब जन करहिं कथन चिर काला,
तव अपकीर्ति-कलंक विशाला।
माननीय जन कहहिं विचारी,
यह अपकीर्ति मरण से भारी।।३४।।

कहहिं महारथि रण तजिभागा,
जो पहिले करि मान अगाधा।
लघुता पार्थ! मिले तब तोही,
भाग चला भट रण तजि सो ही।।३५।।

अवाच्यवादांश्च बहून्–
वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं
ततो दुःखतरं नु किम्।।३६।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं
जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय
युद्धाय कृतनिश्चयः।।३७।।

सुखदुःखे समे कृत्वा
लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व
नैवं पापमवाप्स्यसि।।३८।।

एषा तेऽभिहिता सांख्ये
बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु।
बुद्ध्यायुक्तो यया पार्थ
कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।३९।।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति
प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य
त्रायते महतो भयात्।।४०।।

वैरि तुम्हार विनिन्दहिं तोहीं,
कह कटु वच, उपहासहिं ओही।
रिपु, अपमानित कर बल तोरे,
एहि से दुखद सकल दुख थोरे।।३६।।

यदि कोन्तेय! मरहु रण माहीं,
तब सुरलोक सुनिश्चित पाहीं।
पावहि राज तुमहुँ यदि जीते,
दृढ़ मति कर, तुम लड़हु अभीते।।३७।।

दोहा–

लाभ–हानि अरु हार, जय,
सुख–दुख कर समभाव।
युद्ध निमित्तहि लड़हु तुम
एहि विधि पाप न पाव।।३८।।

सांख्य शास्त्र के ज्ञान इहे,
अब कर्म–योग सुनु बात।
जेहि विधि युक्त[१] भयउ तुम,
कर्म बन्ध नहिं पार्थ।।३९।।

चौपाई–

बीज विनाश कबहुँ नहिं होई,
पुनि विपरीत दोष नहिं कोई।
तनिकहु धरम ई पालित होई,
जन्म–मृत्यु रक्षित कर सोई।।४०।।

---

१. उक्त = साथ

व्यवसायात्मिका बुद्धि-
रेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च
बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।।४१।।

यामिमां पुष्पितां वाचं
प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ
नान्यदस्तीति वादिनः।।४२।।

कामात्मानः स्वर्गपरा
जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां
भोगैश्वर्यगतिं प्रति।।४३।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां
तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः
समाधौ न विधीयते।।४४।।

त्रैगुण्यविषया वेदा
निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो
निर्योगक्षेम आत्मवान्।।४५।।

बुद्धि सुनिश्चित एहि विधि होई,
एहि पथ पथिक निरन्तर जोई।
विविध विवेक भेद बहु सोई,
अर्जुन! वह अविवेकहि होई।।४१।।

दोहा-

स्वर्ग-काम-प्रिय, वेदविद
मूढ़ समझि नहिं पाइ।
एहि ते इतर न कछु कहीं,
बोलहिं बात बढ़ाइ।।४२।।

विविध कर्म विस्तार युत,
सदा होय सुख भोग।
जन्म कर्मफल प्रद सभी,
बात कहहिं अस लोग।।४३।।

चौपाई-

होहिं विमोहितजन एहि बाता,
भोग विभवरत मनहिं सुहाता।
नहिं तहँ बुद्धि पार्थ! व्यवसाई[1],
तेहि जन कबहुँ समाधि न आई।।४४।।

सबहि वेद, गुण तीनहिं गाई,
अर्जुन! उठु इन गुणन विहाई।
क्षेम, लाभ, अरु द्वैतहि छोड़ी,
आत्म परायण बनु मुँह मोड़ी।।४५।।

१. व्यवसाई = दृढ़

यावानर्थ उदपाने
सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु
ब्राह्मणस्य विजानतः।।४६।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते
मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू-
र्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।४७।।

योगस्थः कुरु कर्माणि
सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा
समत्वं योग उच्यते।।४८।।

दूरेण ह्यवरं कर्म
बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ
कृपणाः फलहेतवः।।४९।।

बुद्धियुक्तो जहातीह
उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व
योगः कर्मसु कौशलम्।।५०।।

सकल करम लघु कूपहि केही,
होहिं विशाल जलाशय से ही।
अन्तर, वेद-तत्त्व हिय धारे,
होहिं सुसिद्ध प्रयोजन सारे।।४६।।

केवल कर्महि के अधिकारी,
नहिं फल आशहि कबहुँ विचारी।
नहिं फल-हेतु, बनहु तुम अबहूँ
कर्महि त्याग करहु नहिं कबहूँ।।४७।।

तज आसक्ति धनञ्जय! अबहीं,
सिद्धि, असिद्धि बराबर सबहीं।
मति बनु कबहुँ करमफल कामी,
समता योग, सबहिं एहि जानी।।४८।।

करम सकाम नीच अति होई,
बुद्धि योग अतिशय बड़ सोई।
आश्रय बुद्धि योग के धरहू,
फल चाहत जन दीनहि सबहू।।४९।।

भगति मगन नर जीवन में ही,
पापपुण्य दोउ मुकुत-भयेही।
करहु योग फल सकल विहाई,
योगहि सकल करम कुशलाई।।५०।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि
फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः
पदं गच्छन्त्यनामयम्।।५१।।

यदा ते मोहकलिलं
बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं
श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।५२।।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते
यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धि-
स्तदा योगमवाप्स्यसि।।५३।।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा
समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत
किमासीत व्रजेत किम्।।५४।।

श्री भगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्-
सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः
स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।।

भगवत-भगति निरत मुनि सबहीं,
सकल करम फल आपन तजहीं।
जनम करम बन्धनहि विमोची,
पावइ ध्रुव वह प्रभु पद को ही।।५१।।

मोह सघन वन पारहि होई,
बुद्धि-विरक्ति मिलहि तब सोई।
जेहिते श्रुतहि सुनन के जोगू,
अन्य मनस्क सकल फल भोगू।।५२।।

सुनि श्रुति वचन भ्रमित मन नाहीं,
होइ दृढ़ बुद्धि समाधि सदा ही।
योगहि प्राप्त तबहि तुम होई,
मिलहिं तुम्हहिं परमातम सोई।।५३।।

अर्जुन कहलें

दोहा- स्थित प्रज्ञाजन केहि कहें,
केहिजन धरहिं समाधि।
कस बोले थिर बुद्धिजन,
बैठे, चल केहि भाँति।।५४।।

श्री भगवान जी कहनीं

दोहा- काम सभी मन के तजे,
जेहि क्षण जन समुदाय।
मगन रहे निज में सदा
दृढ़ प्रज्ञा कहलाय।।५५।।

---

१. श्रुतहि = सुना हुआ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः
सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः
स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।५६।।

यः सर्वत्रानभिस्नेह-
स्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।५७।।

यदा संहरते चायं
कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य-
स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।५८।।

विषया विनिवर्तन्ते
निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य
परं दृष्ट्वा निवर्तते।।५९।।

यततो ह्यपि कौन्तेय
पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि
हरन्ति प्रसभं मनः।।६०।।

चौपाई–

सुख महुँ चाह न दुख महुँ शोका,
जेहि जन विगत राजभय क्रोधा।
अस, मुनिवर दृढ़ बुधि कहलाहीं,
प्रभु एहि विधि पारथ समुझाहीं।।५६।।

स्नेह रहित जन होइ सब भाँती,
सुख दुख महु नहिं हरष विशादी।
नहिं प्रसन्न नहिं द्वेषहि होई,
थिर[१] बुधि तेहि कहहिं सब कोई।।५७।।

जेहि विधि कच्छप अंग बिटोरी,
सबहि समेटत भीतर ओरी।
तेहि-विधि विषयन इन्द्रि हटाई,
दृढ़प्रज्ञा नर वह कहलाई।।५८।।

इन्द्रिय विषय गहहिं नहिं जोई,
विषय विगत वह नर भलु होई।
पर आसक्ति हटहि नहिं तेही,
लखि उत्तम रस भक्ति करेही।।५९।।

इन्द्रिय-दमन जतन सुधि करहीं,
मन बलवान विकल कर सबहीं।
नहिं आसक्ति नशहि एहिलागी,
अर्जुन! सुनहु सत्य एहि भाँती।।६०।।

---

१. थिर = दृढ़

तानि सर्वाणि संयम्य
युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।६१।।

ध्यायतो विषयान्पुंसः
सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः
कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।६२।।

क्रोधाद्भवति संमोहः
सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।६३।।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु
विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा
प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।

प्रसादे सर्वदुःखानां
हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु
बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।६५।।

इन्द्रिय पूर्णवशी जेहि[1] करहीं,
निज दृढ़ चित्त हमहिं में धरहीं।
एहि विधि जेहि इन्द्रिय वश होई।
दृढ़प्रज्ञा, तेहि कह सब-कोई।।६१।।

दोहा–

इन्द्रिय चिन्तन से जगे,
संग[2] भाव मन आइ।
काम जगे आशक्ति से,
कामहि क्रोध बढ़ाई।।६२।।

चौपाई–

उपजइ मोह काम बल सोई,
मोहहि ते पुनि मति भ्रम होई।
तेहिते बुद्धि नशे जन के ही,
बुद्धिनशे भवकूप गिरे ही।।६३।।

रागहि द्वेष रहित जन जोई,
इन्द्रिय सब निज वशकर सोई।
विचरण विषय करत नर जेही,
अन्तःकरण मुदित मन तेही।।६४।।

अन्तःकरण अनन्दित जबहीं,
होय हानि सब दुख के तबहीं
सतत प्रसन्न चित्त जब होई,
तब दृढ़ बुद्धि ब्रह्म में होई।।६५।।

१. जेहि = जो, २. संग = आसक्ति,

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य
न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्ति-
रशान्तस्य कुतः सुखम्।।६६।।

इन्द्रियाणां हि चरतां
यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां
वायुर्नावमिवाम्भसि ।।६७।।

तस्माद्यस्य महाबाहो
निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य-
स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।६८।।

या निशा सर्वभूतानां
तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि
सा निशा पश्यतो मुनेः।।६९।।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं-
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।७०।।

योग रहित बुधि उत्तम नाहीं,
भाव अनुत्तम[१] होइ न ताहीं।
भावहीन मन शांति न आई,
शान्तिहीन नर सुख कस पाई।।६६।।

विचरणशील इन्द्रियमहुँ कोई,
रमत निरन्तर मन जब सोई।
हरत बुद्धि नर की ताहि समाना,
जस समीर जल नाव बहाना।।६७।।

दोहा-

इन्द्रिय, निज-निज विषय से
पूर्ण-विरत वश होइ।
हे, महबाहु! पुरुष सदा,
दृढ़प्रज्ञा तब सोइ।।६८।।

जेहि-क्षण सोवहिं जीव सब,
जागहिं संयमि - लोग।
जेहि क्षण जागत जीव सब,
संयमि साधहिं योग।।६९।।

चौपाई-

सलिल मिलहिं जलनिधि जिमि जाई,
अविचल वारिधि, बढ़इ न पाई।
तेहि विधि विषय, मिलहिं सुधि-देही,
सुधि पावत सुख[१], विषयि न तेही।।७०।।

१ अनुत्तम - जिससे उत्तम कोई नहीं हो।

विहाय कामान्यः सर्वा-
न्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः
स शांतिमधिगच्छति।।७१।।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ
नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि
ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।७२।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः।।

दोहा–

ममता, काम, विहाइ मंद,
सकल कामना हीन
वह नर पावत परम सुख,
कृष्ण भगति नित लीन।।७१।।

ब्राह्मी स्थिति यह पाइके,
नर मोहित नहिं होय।
पावे वह निर्वाण पद,
पार्थ! अन्त–पल सोय।।७२।।

निचोड़

चौपाई– कर्म–योग पुनि ज्ञान–विधाना,
निज मुख समुझावत भगवाना।
पुनि कछु भक्तिहि–योग बखाना,
सार–रूप गीता गुन–गाना।

☆

---

१. सुख = शान्ति।

तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते
मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां
नियोजयसि केशव।।१।।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन
बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य
येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।।२।।

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा
पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां
कर्मयोगेन योगिनाम्।।३।।

तृतीय अध्यायः

सन्दर्भ– (कर्मयोग वर्णन)

चौपाई– कर्म–योग के विविध प्रकारा,
बरनेउ प्रभु, अर्जुन विसतारा।
एहि अध्याय–तीन के सारा,
दर्शन, चिन्तन, भयउ बिचारा।।

अर्जुन पुछलें

ज्ञान गरीय[1] करम से जबहीं,
तब अति घोर करम महुँ हमहीं।
केशव! कहु केहि कारण से हीं,
आप लगावहु करमहिं में हीं।।१।।

उलझित वचन सुनत अस तोरे,
उपजहिं भ्रम अति मानस मोरे।
एकहि मारग हमहिं सुझाऊ,
जेहि विधि हमहिं क्षेम मिल जाऊ।।२।।

श्री भगवान जी बोले

प्रथम कहेउ निष्ठा–विधि दोई,
सांख्य प्रवीन ज्ञान से होई।
ज्ञानयोग पुनि योगिहि जानी,
निष्ठा द्विविध शास्त्र सब मानी।।३।।

---

१. गरीय = श्रेष्ठ।

न कर्मणामनारम्भा-
न्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव
सिद्धिं समधिगच्छति।।४।।

न हि कश्चित्क्षणमपि
जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म
सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।५।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य
य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा
मिथ्याचारः स उच्यते।।६।।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा
नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोग-
मसक्तः स विशिष्यते।।७।।

नियतं कुरु कर्म त्वं
कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते
न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।८।।

नहिं कोउ करम विमुख नर एही,
होइ विमुक्त करम फल से ही।
नहिं केवल सन्यासहि साधे,
जगमहुँ जन कछु सिद्धिहि न पाते।।४।।

नहिं क्षण कोऊ मनुष जग माहीं,
प्रति पल रहत करम रत नाहीं।
प्रकृति जनित गुण परवश होई,
करमहिं हेतु विवश होइ सोई।।५।।

दृढ करि सब इन्द्रिय नर रोके,
चिन्तन करत विषय वश होके।
वह मतिमूढ़ पखण्डिहि होई,
दम्भी जन तेहि कह सब कोई।।६।।

मन से जोइ, इन्द्रि-वश करहीं,
पुनि आसक्ति रहित जन रहहीं।
कर्म-योग आचरहिं सदाही,
अतिविशिष्ट नर वह कहलाहीं।।७।।

शास्त्र विहित करु कर्म सभी ही,
कर्म श्रेष्ठ, बिन कर्म-कभी भी।
पुनि यदि कर्म करहि नहिं कोई,
तब जीवन निरवाह न होई।।८।।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र
लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय
मुक्तसङ्गः समाचर।।९।।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा
पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्व-
मेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।१०।।

देवान्भावयतानेन
ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः
श्रेयः परमवाप्स्यथ।।११।।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा
दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो
यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।।१२।।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो
मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा
ये पचन्त्यात्मकारणात्।।१३।।

दोहा– तज मख के शुभ कर्म सभी
बन्धन अर्जुन! जान।
अनासक्त तब होइके,
करहु करम मख मान।।९।।

सृष्टिपूर्व, विधि मख सहित,
रचिकर कहइ विधान
वृद्धि सकल होइ मखहि से,
होइ परम कल्यान।।१०।।

चौपाई–
सुरगण तुष्ट करहु मख से ही,
सुर सब क्षेम करहिं सब के ही।
होइ परसपर तुष्टिहि दोऊ,
परम श्रेय पावहु सब कोऊ।।११।।

बिन माँगहि इच्छित फल देहीं,
सुर सब तुष्ट मखादिक से हीं।
सुर प्रदत्त धन, सुर, न चढ़ावें,
भोगहिं निज तसकर कहलावें।।१२।।

यज्ञ–शिष्ट भोजन जेहिं करहीं,
पाप–सबहि छूटे तेहि तब हीं।
इन्द्रिय सुख–हित अपर जे खाहीं,
तेहि मुख निश्चय पापहि जाहीं।।१३।।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि
पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो
यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।१४।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि
ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म
नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।१५।।

एवं प्रवर्तितं चक्रं
नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो
मोघं पार्थ स जीवति।।१६।।

यस्त्वात्मरतिरेव स्या-
दात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्ट-
स्तस्य कार्यं न विद्यते।।१७।।

नैव तस्य कृतेनार्थो
नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु
कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।।१८।।

जगत-जीव सब अन्नहि से ही,
अन्न वही पुनि बारिश से ही।
बरषा वह शुभ यज्ञहि होई,
विहित करम यज्ञादिक सोई।।१४।।

कर्म होइ वह ब्रह्महि से ही,
ब्रह्म वसे वह अक्षर में ही।
एहिविधि ब्रह्म रमें मखमाहीं,
कहेउ कृष्ण अस अर्जुन पाहीं।।१५।।

दोहा-

चलत न जो एहि भाँति से,
प्रकृति चक्र अनुसार।
इन्द्रिय-सुख-रत पाप मय
व्यर्थ बने भू-भार।।१६।।

रहे आत्मारत जो सदा,
आत्मतृप्ति पुनि होय।
शेष न कुछ करणीय हो,
आत्म-तुष्ट जन जोय।।१७।।

तेहि जन-हेतु जगत नहिं होई,
कर्म - अकर्म - प्रयोजन कोई।
नहिं निरभर पर-जन पर होऊ,
निज मन मगन सदा रह सोऊ।।१८।।

तस्मादसक्तः सततं
कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म
परमाप्नोति पूरुषः।।१९।।

कर्मणैव हि संसिद्धि-
मास्थिता जनकादयः।
लोकसङ्ग्रहमेवापि
सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।।२०।।

यद्यदाचरति श्रेष्ठ-
स्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते
लोकस्तदनुवर्तते ।।२१।।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं
त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं
वर्त एव च कर्मणि।।२२।।

यदि ह्यहं न वर्तेयं
जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते
मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।२३।।

तज आसक्ति मनहिं से अबहीं,
कर करतव्य करम को सबहीं।
अनासक्त होइ करम करेही,
नहिं संशय, तेहि ब्रह्म मिले ही।।१९।।

जनक आदि ज्ञानी जन जोई,
अनासक्ति-मन सिद्दि सजोई।
करहु विचार जगत के लोगू,
सब विधि करम करन तुम जोगू।।२०।।

महापुरुष जस करतब करहीं,
अन्य पुरुष सब तेहि अनुसरहीं।
जोइ प्रमाण सुधि-जन जग देई,
जन समुदाय करहिं सब तेई।।२१।।

हमहिं न कछु दुरलभ जग सोई,
प्राप्त करन हम चाहउँ जोई।
नहिं कुछ करतब अर्जुन! सेसा,
तबहुँ करम हम करउँ विसेसा।।२२।।

पारथ! आलस तजि सब भाँती,
नहिं बरतउँ निज करम सदाही।
तबहि होइ महती सब हानी,
ओहि विधि करइ जगत मोहि मानी।।२३।।

उत्सीदेयुरिमे लोका
न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्या-
मुपहन्यामिमाः प्रजाः।।२४।।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो
यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्त-
श्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम् ।।२५।।

न बुद्धिभेदं जनये-
दज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि
विद्वान्युक्तः समाचरन्।।२६।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि
गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा
कर्ताहमिति मन्यते।।२७।।

तत्त्ववित्तु महाबाहो
गुणकर्मविभागयोः ।
गुणा गुणेषु वर्तन्त
इति मत्वा न सज्जते।।२८।।

यदि हम करम करऊँ नहिं कोई,
तबहि भ्रष्ट सब लोकहि होई।
हम तब संकर कारक होऊ,
पुनि सब जगत विनाशक सोऊ।।२४।।

फल अनुराग सहित अविवेकी,
करहिं करम निज नित्य विशेषी।
अनासक्त, भारत! सुधि वइसे,
करहिं करम जन-हित होइ जइसे।।२५।।

करमासक्त जनहिं मन में हीं,
नहिं सुधि रोक करहिं कछु तेहीं।
करि सब शास्त्र विहित शुभ धरमा,
पुनि करवावहिं तेहि सब करमा।।२६।।

प्राकृति गुणवश कर्म विधाना,
जोइ जग होंहिं निरन्तर नाना।
अहंकार-मोहित मन माने,
हमहिं करउँ सब, अस, जिय जाने।।२७।।

दोहा-

गुण औ कर्म विभाग के,
तत्त्वबोध जेहि होय।
पारथ! नहिं अनुराग[1] निज[2],
गुणहिं[3] लगावहिं सोय।।२८।।

१. अनुराग = आसक्ति। २. निज = अपने को। ३. गुणहि = इन्द्रियों में आसक्ति।

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः
सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दा-
न्कृत्स्नविन्न विचालयेत्।।२९।।

मयि सर्वाणि कर्माणि
संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा
युध्यस्व विगतज्वरः।।३०।।

ये मे मतमिदं नित्यमनु-
तिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो
मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।।३१।।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो
नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्ता-
न्विद्धि नष्टानचेतसः।।३२।।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः
प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि
निग्रहः किं करिष्यति।।३३।।

प्रकृति–गुण - मोहित नर,
कर्म गुणहिं रत जोइ।
मन्द बुद्धि तेहि ज्ञानिजन,
विचलित करहिं न कोइ।।२९।।

चौपाई–

आपन करम सकल जोइ करहू,
कर अर्पित मोहि आगेहु बढ़हू।
तजहु आश–फल–ममता सबहीं,
करहु युद्ध बिन आलस अबहीं।।३०।।

दोषहि दृष्टि रहित नर जोई,
निज मन श्रद्धापूर्ण सजोई।
मत अनुसरत सदा वह मेरे,
छूटहिं भव बन्धन अति ठेरे।।३१।।

जो जन दोष लगावत मोहीं,
नहिं पथ चलत कहत हमजोहीं।
विरहित ज्ञान विमूढहि तेही,
समुझहु नष्ट करम निज़ सेही।।३२।।

प्रकृति विवश नर करम करेही,
सुधि अनुसरहिं विविध विधि तेहीं।
नहिं हठ[१] कोउ कछु करहि विसेषा,
होउ विपरीत प्रकृति एहि लेखा।।३३।।

---

१. हठ = निग्रह, प्राकृत गुण दमन।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे
रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छे-
त्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।३४।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः
परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः
परधर्मो भयावहः।।३५।।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं
पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय
बलादिव नियोजितः।।३६।।

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष
रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा
विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।३७।।

धूमेनाव्रियते वह्नि-
र्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भ-
स्तथा तेनेदमावृतम्।।३८।।

इन्द्रिय-इन्द्रिय रागहि दोषा,
गुप्तरूप रह छिपइ विशेषा।
तेहि दोउ वशनर विवश न होई,
शिव-पथ[१] संकट अरि सम सोई।।३४।।

आपन धरम-विगुण भलु होई,
नहिं आचरित धरम पर[२] कोई।
मरन धरम निज अति शिवकारी,
पर, परधरम भयावह भारी।।३५।।

अर्जुन कहलें

कह अर्जुन प्रभु! नरकहि भाँती,
केहिबल बनई ऊ बरवश पापी।
नहिं चाहत करतब अघकारी,
केहि प्रेरित हरि! कहऊ विचारी।।३६।।

श्री भगवान जी कहनीं

कामहि, क्रोध, रजोगुण सेही,
बहुभोजी नहिं उदर भरे ही।
सब अघ खानि मानि एहि केही,
प्रबल शत्रु निज जानहु एही।।३७।।

धूम अनल, मलदर्पण ठाँके,
जेहि विधि जेर[३] गरभ को छादे।
वोहि विधि काम अच्छादित होई,
आवृत सतत् आतमा सोई।।३८।।

१. शिव-पथ = कल्याण का मार्ग। २. पर = अपर, दूसरा। ३. जेर = गर्भाशय

आवृतं ज्ञानमेतेन
ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय
दुष्पूरेणानलेन च।।३९।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि-
रस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष
ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।४०।।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ
नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं
ज्ञानविज्ञानाशनम् ।।४१।।

इन्द्रियाणि पराण्याहु-
रिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि-
र्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।४२।।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा
संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो
कामरूपं दुरासदम्।।४३।।

।।ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः।।

दोहा– अर्जुन! अनल समान ही,
पूरन कबहुँ न जोय
कामरूप निज शत्रु से,
आवृत, नर-धी[१] होय।।३९।।

(चौपाई)
मन, इन्द्रिय बुधि वास करेही,
नित यह अरि सम बन सब देही।
आवृत कर सब ज्ञान प्रकाशा,
बाढ़हि तब जनमोह पिपासा।।४०।।

प्रथमहि इन्द्रिय वशकर सोई,
ज्ञान-विज्ञान-विनाशक जोई।
पारथ! मारहु बरबश-कामा,
अतिशय जोइ पाप के धामा।।४१।।

इन्द्रिय - वर[२], जड़ से सब हीते,
पुनि मन-वर अति इन्द्रि सभी से।
बुद्धि गरीय[३] सदा मन से ही,
आत्म सदा सब बुद्धि परेही।।४२।।

दोहा–
आत्म[४] परे मन, बुद्धि से,
अर्जुन! एहि विधि - जान।
मन, वशकर तुम जीतहू,
कामहि शत्रु महान्।।४३।।

निचोड़–
इन्द्रिय-वश होइहि केहि भाँती, यौगिक आसन की सब बाती।
कहेउ कृष्ण पारथ से तबही, समर-भूमि भ्रम उपजइ जबहीं।।

---

१. धी = बुद्धि। २. वर = श्रेष्ठ। ३. गरीय = श्रेष्ठ ४. आत्म = अपने को

।। अथ चतुर्थोऽध्यायः ।।

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं
प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह
मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।।१।।

एवं परम्पराप्राप्त-
मिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता
योगो नष्टः परन्तप।।२।।

स एवायं मया तेऽद्य
योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति
रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।।३।।

चतुर्थ अध्याय

(दिव्यज्ञान के रहस्य)

सन्दर्भ – दोहा–

दिव्य ज्ञान के ज्ञान शुची, पाइ लिए विशवान।
कृष्ण–कृपा रवि घूमते, मनु पायउ तेहि ज्ञान।।
एहि अध्याय माँहि भगवाना, अर्जुन पाहि कहत सब ज्ञाना।
एहिमहुँ हरि सब ज्ञान बताई, उठहु पार्थ! तुम करहु लड़ाई।।

श्री भगवान जी कहनीं

दोहा– हमहिं कहेउ रवि से कबहूँ,
यह अविनाशी ज्ञान,
रवि निज सुत–मनु सेइ कहे,
मनु इक्ष्वाकु महान।।१।।

चौपाई–

पार्थ परंतप! क्रम चलि आई,
एहि योगहिं ऋषि राजन पाई।
काल–चक्र–वश लुप्त भये ही,
एहि धरणी पर योग सबेही।।२।।

मम प्रिय भगत सखा तुम होउ,
कहऊँ पुरातन योगन सोऊ।
इहई रहस्य अनुत्तम[१] लोकू,
सब विधि गुप्त रखन के योगू।।३।।

१. शुची = शुचि= पवित्र, पार्थ = परंतप!

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म
परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां
त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।४।।

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि
जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि
न त्वं वेत्थ परन्तप।।५।।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा
भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय
सम्भवाम्यात्ममायया ।।६।।

यदा यदा हि धर्मस्य
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य
तदात्मानं सृजाम्यहम्।।७।।

परित्राणाय साधूनां
विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय
सम्भवामि युगे युगे।।८।।

अर्जुन कहलें

अति-प्राचीन जनम रवि के ही,
अर्वाचीन जनम प्रभु तेही।
केहि विधि समुझउँ हम यह गाथा,
आपहि ने यह रविहि क-हाथा।।४।।

श्री भगवान जी कहनीं

हे प्रतापि अर्जुन! तुम सुनऊ,
तोहि मम जनम अनेकन भयऊ।
हम जानत तुम जानत नाहीं,
एहि विधि हरि कह पारथ पाहीं।।५।।

यदपि जनम नहिं, जीवहि के ही,
अव्यय, परमईश हम तेही।
करउँ अधीन प्रकृति निज में ही,
निज मायावश-सम्भव देही।।६।।

जब जब होइ धरम अतिहानी,
अधरम बढ़इ प्रबल जग जानी।
तब भारत! सिरजऊँ निज देही,
रूप सकार समुख जग केही।।७।।

करउँ उधार साधु जन केरे,
पुनि विनाश सब पापिन ढेरे।
धरम सुधारन कारन से ही,
जुग-जुग हम प्रकटउँ जग एही।।८।।

---

१. अनुत्तम = जिससे उत्तम दूसरा नहीं हो, सर्वश्रेष्ठ।

जन्म कर्म च मे दिव्य-
मेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म
नैति मामेति सोऽर्जुन।।९।।

वीतरागभयक्रोधा
मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा
पूता मद्भावमागताः।।१०।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते
तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते
मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।११।।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं
यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके
सिद्धिर्भवति कर्मजा।।१२।।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं
गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां
विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।।१३।।

जनम करम सब दिव्य हमारे,
तत्त्वदर्शिबुध जानहिं सारे।
वह तन त्यागि जनम नहिं पावे,
पारथ! पुरुष हमहिं अपनावे।।९।।

बीत राग भय क्रोधहि साधू,
हमहिं हेतु भये प्रेम अगाधू।
एहिविधि मम आश्रित बहुतेरे,
पूत तप्त लहिं[२] रूपहि मेरे।।१०।।

अर्जुन! जोइ शरण-गह मोहीं,
तेहि विधि हमहुँ भजउँ जन ओहीं।
सब जन-सबविधि जग बहुतेरे,
एहि अनुसरहिं सुमारग मेरे।।११।।

चाहत करम फलहि नरलोका,
देवन पूजहिं साधहिं योगा।
कर्मज-सिधि अति सहज मिलेही,
सुर-पूजन हित जतन किये ही।।१२।।

चारहु वरण सृजित हमहीं से,
गुण अरु करम विभाजन ही से।
यद्यपि रचउँ अखिल जग कोही,
नहिं कर्ता तुम मानहु मोहीं।।१३।।

१. पूत तप्त = तपस्या से पवित्र। २. लहिं = प्राप्त करते हैं। (मुझे प्राप्त कर चुके हैं)

न मां कर्माणि लिम्पन्ति
न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति
कर्मभिर्न स बध्यते।।१४।।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म
पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं
पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।।१५।।

किं कर्म किमकर्मेति
कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि
यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।१६।।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं
बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं
गहना कर्मणो गतिः।।१७।।

कर्मण्यकर्म यः पश्ये-
दकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु
स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।१८।।

दोहा–

नहिं फल चाह तनिक मन,
कर्म न बाँधहि मोहिं।
एहि विधि जानत जोइ जन,
करम बँधइ नहिं सोइ।।१४।।

जानहिं एहि मुमुक्षु-जन,
बहुत पुरातन काल।
कर्म किये जस तस करो,
निज करतब को पाल।।१५।।

चौपाई–

केहि कह, करम, अकरमहि, केही,
समुझत नहिं कवि[१] मोहित तेही।
तोहि वह करम सविध हम कहऊँ,
जेहि जानत कछु अशुभ न रहऊँ।।१६।।

कर्म-अकर्म-विकर्म स्वरूपा,
बोध्य तत्त्व जानहु सविशेषा।
गति, अति-गहन करम की होई,
तुम अशेष जानहु सच सोई।।१७।।

दोहा–

देखत कर्म, अकर्म में,
पुनि अकर्म सब कर्म।
सोइ ज्ञानी जन जगत में,
युक्त[१] करहिं जग धर्म।।१८।।

---

१. कवि = विद्वान, संत

यस्य सर्वे समारम्भाः
कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं
तमाहुः पण्डितं बुधाः॥१९॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं
नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि
नैव किञ्चित्करोति सः॥२०॥

निराशीर्यतचित्तात्मा
त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म
कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥२१॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टो
द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च
कृत्वापि न निबध्यते॥२२॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य
ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म
समग्रं प्रविलीयते॥२३॥

ज्ञानी जन-पण्डित तेहि कहहीं,
सकल करमफल चाह न रहहीं।
ज्ञान, अनल सब करम जलावे,
सोइ जन जग पण्डित कहलावे।।१९।।

अखिल विहाइ करमफल कोही,
रह निज तुष्ट सुतन्त्रहि जोही।
सकल करम करि नहिं फल कामा,
परम सुतन्त्र तुष्ट निजधामा।।२०।।

कामहि तज, नहिं संग्रह कोई,
जेहि मन नित निज वश महुँ होई।
दैहिक करम करत नर जेही,
नहिं कछु पाप तनिक भर तेही।।२१।।

बिनश्रम लाभहि तुष्टहि जोई,
इरिषा द्वन्द्व रहित मन होई।
सिद्धि-असिद्धि बराबर जाने,
करम करत नहिं बन्धन आने।।२२।।

अनासक्त जन प्रकृतिहि से ही,
विचरत रहत सुज्ञानहिं में ही।
ब्रह्मलीन तेहिके सब करमा,
एहिविधि हरि समुझावत धरमा।।२३।।

१. युक्त = भगवत् प्रेम में तल्लीन, दिव्यज्ञान से पूर्ण।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हवि-
र्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं
ब्रह्मकर्मसमाधिना ।।२४।।

दैवमेवापरे यज्ञं
योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं
यज्ञेनैवोपजुह्वति ।।२५।।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये
संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य
इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।।२६।।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि
प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ
जुह्वति ज्ञानदीपिते।।२७।।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा
योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च
यतयः संशितव्रताः।।२८।।

दोहा- मख, पावक, हवि अर्पण,
ऋत्विज आहुति कर्म।
ब्रह्म-कर्म-रत योगिजन,
प्राप्य फलादिक ब्रह्म।।२४।।

चौपाई-

यदि कछु विविध मखादिक सेही,
पूजहिं देव विविध-विधि वेही।
ब्रह्म रूप पावक महुँ कोई,
मख महुँ मख अर्पित कर सोई।।२५।।

श्रोत्र आदि सब इन्द्रिय केही,
संयम पावक हविष करेही।
इन्द्रि-अनल महुँ विषय जलाई,
यति[३] कछु आहुति-विधि अपनाई।।२६।।

निज संयम योगाग्नि जलाई,
करहिं प्रदीप्त सुज्ञान सहाई।
कछु इन्द्रिय-प्राणादिक करमा,
करहिं योगि नित होमहि धरमा।।२७।।

कुछ तप-दानहि योग बनाई,
हवि, सम, होमहिं याग कराई।
वेदाभ्यास प्रबुद्ध बने हीं,
दिव्य ज्ञानहित हवन करेहीं।।२८।।

---

१. मख = यज्ञ। २. हुताशन = अग्नि। ३. यति = योगी, साधक।

अपाने जुह्वति प्राणं
प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा
प्राणायामपरायणाः ॥२९॥

अपरे नियताहाराः
प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो
यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो
यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य
कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥३१॥

एवं बहुविधा यज्ञा
वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वा-
नेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥३२॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञा-
ज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ
ज्ञाने परिसमाप्यते॥३३॥

कुछ अपान महुँ प्राणहि होमे,
कुछ अपान प्राणहि महुँ होमें।
प्राणापानहि रोकइ कोई,
प्राणायामहि ध्यावहिं कोई।।२९।।

प्राणहि में निज प्राणहि कोही,
कुछ मित[1] भोजी हवन करेही।
पापविनाश मखादिक से ही,
किये यज्ञ विद् होमहिं सेही।।३०।।

मख अवशेष यती कोइ खाहीं,
सत्य सनातन ब्रह्महिं जाहीं।
मख न करहिं कुरुवर! नर लोका,
सुख पावहि कस वह पर लोका।।३१।।

एहि विधि बहुतहि यज्ञ विताना[1],
कथित वेद-वाणी महुँ नाना।
जानउ यदि इस रूपहि में हीं,
मुक्त होइ सब बन्धन से ही।।३२।।

द्रव्य-यज्ञ से अति बड़ होई,
ज्ञान यज्ञ नित जानहु सोई।
सकल करम ज्ञानहिं महुँ जाहीं,
मिटइ पार्थ! यह मिथ्या नाहीं।।३३।।

---

१. मित-भोजी = अल्पाहारी, फलाहारी।

तद्विद्धि प्रणिपातेन
परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं
ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।३४।।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोह-
मेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण
द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।।३५।।

अपि चेदसि पापेभ्यः
सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव
वृजिनं सन्तरिष्यसि।।३६।।

यथैधांसि समिद्धोऽग्नि-
र्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि
भस्मसात्कुरुते तथा।।३७।।

न हि ज्ञानेन सदृशं
पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः
कालेनात्मनि विन्दति।।३८।।

तत्त्व दर्शिज्ञानिहुँपहिं जाई,
करहु दण्डवत शिरहि झुकाई।
पूछहु प्रश्न सरल चित होई,
तोहिं उपदेश करहिं सब सोई।।३४।।

तब नहिं भ्रम पारथ! तुम केरे,
विमल विवेक होइ हिय तेरे।
तबहिं दिखाइ जीव सब जाती,
हमहिं तुमहिं महुँ एकहि भाँती।।३५।।

यदि समुझइ जग, पापिहि घोरा,
नहिं कछु दोष होइ तब तोरा।
दिव्य-सुज्ञानहि नाव बनाई,
दुःखसागर सब पारहि जाई।।३६।।

ज्वलित अग्नि, इंधन जेहि भाँती,
देइ जलाइ बनावत राखी।
तेहि-विधि ज्ञान नशहि सब कामा,
पावक सत्य करइ निज नामा।।३७।।

नहिं कछु जगमहुँ ज्ञान समाना,
जो पवित्र साधन इह आना।
योग-सिद्ध-यति जो जग होई,
यथा समय पावहिं फल सोई।।३८।।

१. वितान = विस्तार, प्रकार-प्राचुर्य।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं
तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति-
मचिरेणाधिगच्छति ।।३९।।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च
संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो
न सुखं संशयात्मनः।।४०।।

योगसंन्यस्तकर्माणं
ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि
निबध्नन्ति धनञ्जय।।४१।।

तस्मादज्ञानसम्भूतं
हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योग-
मातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।।४२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

श्रद्धा सहित, विषय वश जेही,
रहत सतत-रत चिन्तन से ही।
उपजहिं दिव्यज्ञान हिय ताहीं,
परम शांति पावत पल माँहीं।।३९।।

श्रद्धा-ज्ञान-रहित नर जोई,
श्रुति-संशय जेहि के मन होई।
उभयलोक[१] सुख-शान्ति न तेही,
अचिर[२] पतन पुनि सब विधि से ही।।४०।।

दोहा- तज सब कर्महि योग बल,
संशय-क्षत बुधि सेइ।
अन्तरमन वश पार्थ! जेही,
कर्म न बाँधइ तेइ।।४१।।

भ्रम जेहि-तेहि-मन ज्ञान बिनू,
काटउ ज्ञान-कृपान।
उठहु पार्थ! रण हेतु ही,
योगाश्रित रखि ज्ञान।।४२।।

निचोड़-
दिव्य-ज्ञान-वेदान्त के, दर्शन जेइ अतिगूढ़।
समुझहिं एहि सुधि सन्त सब, नहिं समुझहिं मति मूढ़।।
परमपुरुष भगवान जी, दिव्य अखिल तेहि काम।
एहि गीता-गुण गान से, यति पावे परधाम।।

☆

---

१. लोक, परलोक। २. अचिर = शीघ्र।

।।अथ पञ्चमोऽध्यायः।।

अर्जुन उवाच

सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण
पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं
तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्।।१।।

श्रीभगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च
निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासा-
त्कर्मयोगो विशिष्यते।।२।।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी
यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो
सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।।३।।

पञ्चम अध्याय

संदर्भ- चौपाई-

कर्म-योग के गूढ़ बिचारा, वरणित सकल ग्रंथ आधारा।
भाषाबद्ध करऊँ हम सोही, नहिं प्रतिभा मानहु कछु मोहीं।।
मति अनुसार लिखऊँ हम जोई, एहि अध्याय अधारित सोई।
त्यागहु कर्म, करउ युत[१] होई, पूछत पार्थ कृष्ण से सोई।।

अर्जुन कहलें

चौपाई-कहउ कबहुँ अति उत्तम योगा,
कबहुँ त्याग सब साधन भोगा।
दोउन माहिं अनुत्तम[२] जोई,
शिवप्रद[३] साधन प्रभु कह सोई।।१।।

श्री भगवान जी कहनीं

योगहि अरु सन्यासहि दोऊ,
परम शिवद साधक-हित होऊ।
साधन सुभग करम के तेही,
यह उत्तम सन्यासहि सेही।।२।।

जेहि मन द्वेष न कामहि कोई,
तेहि सन्यास कहहिं सब कोई।
तज सक द्वन्द्व पुरुष सुख से ही,
भव-बन्धन बाधइ नहिं तेही।।३।।

---

१. युत = ईश्वर चिन्तन। २. अनुत्तम = सर्वोत्तम, श्रेष्ठ। ३. शिवप्रद = कल्याणप्रद।

साङ्ख्योगौ पृथग्बालाः
प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्य-
गुभयोर्विन्दते फलम्।।४।।

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं
तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साङ्ख्यं च योगं च
यः पश्यति स पश्यति।।५।।

संन्यासस्तु महाबाहो
दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म
नचिरेणाधिगच्छति ।।६।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा
विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा
कुर्वन्नपि न लिप्यते।।७।।

नैव किञ्चित्करोमीति
युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्र-
न्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ।।८।।

एहि सन्यास पृथक सब योगा,
कहहिं 'मूढ़', नहिं पण्डित लोगा।
होइ उभय फल एकहि साधे,
एकहिं फल नर ब्रह्महिं पाते।।४।।

ज्ञानयोगि पावहिं गति जोई,
कर्मयोगि पावहिं सब सोई।
सांख्यहियोग समानहि माने,
वह नर तत्व सकल पहचाने।।५।।

केवल कर्म त्याग कर कोई,
भक्ति विहीन सुखी नहिं होई।
किन्तु भक्ति-रत मुनिजन जोई,
पावहिं अचिर[१]-ब्रह्म शुचि सोई।।६।।

मन-वश पुनि अन्तः शुचि जाके,
करुणा मन सब जीवहिं पाके[२]।
सकल करम करि फँसइ न सोई,
कर्मबन्ध बाधक जन जोई।।७।।

मँहकत, श्वपत, विलोकत, भोजी,
धावत, छुवत-सुनत जन योगी।
जानहिं नहिं निज कर्महि जोई,
मूल तत्व जानत-सब सोई।।८।।

१. अचिर = शीघ्र। २. पाके = लिए, वास्ते।

प्रलपन्विसृजन्गृह्ण-
न्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु
वर्तन्त इति धारयन्।।९।।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि
सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन
पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।१०।।

कायेन मनसा बुद्ध्या
केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति
सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये।।११।।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा
शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण
फले सक्तो निबध्यते।।१२।।

सर्वकर्माणि मनसा
संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही
नैव कुर्वन्न कारयन्।।१३।।

पावत छोड़त, बोलत जाहीं,
आँखिन खोलत मूँदत ताहीं।
करउँन कछु हम, मानहिं अइसे,
होहिं तत्त्वविद् साधक तइसे।।९।।

सकल करमफल ईशवर केही,
अनासक्त, कर अरपित जेही।
वह अघ कर्म लिप्त नहिं वइसे,
कमलपत्र जल छुवत न जइसे।।१०।।

तन-मन-बुधि पुनि इन्द्रिय से ही,
तजि सब संग विविध विधि केही।
करहिं करम यति केवल अइसे,
अन्तःकरण विशोधन जइसे।।११।।

कर्मज फल, तजि, युत[२] मन-जाके,
परम शान्ति उपजइ हिय-ताके।
पर, फल-काम सक्त जन जोही,
तब फल रज्जु बँधहि नर वोही।।१२।।

दोहा-

सब इन्द्रिय वश में किये,
सकल कर्म परिहार।
वह देही[३] उस पुर वशे,
जहाँ बने नव[४]-द्वार।।१३।।

---

१. श्वपत = सोते हुए, २. युत = दिव्य ज्ञान से पूर्ण। ३. देही=मनुष्य।

न कर्तृत्वं न कर्माणि
लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं
स्वभावस्तु प्रवर्तते।।१४।।

नादत्ते कस्यचित्पापं
न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं
तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।१५।।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं
येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं
प्रकाशयति तत्परम्।।१६।।

तद्बुद्धयस्तदात्मान-
स्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं
ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।।१७।।

विद्याविनयसम्पन्ने
ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च
पण्डिताः समदर्शिनः।।१८।।

चौपाई-

नहिं प्रभु रचत जगत के कामा,
नहिं संयोग करम फल नाना।
प्राकृत गुण वश कारज होहीं,
प्रभु समुझावत अर्जुन-योंही।।१४।।

कोउजन-अघ हरि कबहूँ न लेही,
नहिं शुभ करम ग्रहण कर तेहीं।
आवृत सब अज्ञानहिं सेही,
होइ मूढ़ नर मोहित वेही।।१५।।

पर प्रबुद्ध जोहि ज्ञानहि से ही,
विनसइ सकल अविद्या तेही।
होइ प्रकाशित रवि समताही,
तत्त्व ज्ञान विकसित उर माहीं।।१६।।

जब नर-मन-बुधि सरधा जागी,
होइ शरण प्रभुपद अनुरागी।
तब अघहीन होइ मन ताही,
पाइ परमगति संशय नाहीं।।१७।।

विद्याविनय-सहित द्विज देही,
अथवा गज गह श्वानन में ही।
समदर्शीपण्डित - हिय नाना,
सोचहिं जब हित एक समाना।।१८।।

---

४. नवद्वार- आँखें (२), नासिकाछिद्र (२), कर्णछिद्र (२), मुँह (१), गुदा (१) उपस्थ (स्त्री या पुरुष की जननेन्द्रिय-१) कुल योग= ९ द्वार (छिद्र)।

इहैव तैर्जितः सर्गो
येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म
तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः।।१९।।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य
नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो
ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः।।२०।।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा
विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा
सुखमक्षयमश्नुते ।।२१।।

ये हि संस्पर्शजा भोगा
दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय
न तेषु रमते बुधः।।२२।।

शक्नोतीहैव यः सोढुं
प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं
स युक्तः स सुखी नरः।।२३।।

समता भाव उपजि जिय जोइ,
जीवित जीत चराचर सोई।
होइ अदोष ब्रह्म, सम साधू,
तेहि उर नित परब्रह्म निवासू।।१९।।

दोहा–

पाइ वस्तु प्रिय पुरुष जे हर्षित कबहुँ न होइ।
अप्रिय के पुनि पाइ कबो, होइ विचलित ना सोइ।।
मोहरहित दृढ़ बुद्धि जेई, ब्रह्म ज्ञानि नर सोइ।
परम ब्रह्म परमात्म मँहु पूर्वहि ऊ रत होइ।।२०।।

चौपाई–

बाहर विषय, विरत मन जाके,
अन्तरमन रत प्रभु–पद जाके।
ब्रह्मयुक्त अनुभव कर सोई,
तेहि जन–मन अक्षय सुख होई।।२१।।

बाहर योग भोग जोइ आवे,
अति दुःख के कारण कहलावे।
वह अनित्य नित कष्टहि देई,
सुधिजन पार्थ! रमहि नहिं तेई।।२२।।

सह सकु काम–क्रोध के वेगा,
जब लगि नाहिं तजइ वह देहा।
सोइ जन योगी, जग कहलावे,
अतिशय सुख सब जीवन पावे।।२३।।

योऽन्तःसुखोऽन्तराराम-
स्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं
ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।।२४।।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाण-
मृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः
सर्वभूतहिते रताः।।२५।।

कामक्रोधवियुक्तानां
यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं
वर्तते विदितात्मनाम्।।२६।।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यां-
श्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा
नासाभ्यन्तरचारिणौ ।।२७।।

यतेन्द्रियमनोबुद्धि-
र्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो
यः सदा मुक्त एव सः।।२८।।

दोहा–

अन्तर सुख, पुनि आत्मरत,
अन्तर ज्योतिहि जाहि।
होइ युक्त वह ब्रह्म से,
योगि परम–पद पाहि।।२४।।

चौपाई–

पाप रहित संयम मन से ही,
संशय रहित सदा नर वे ही।
परहित रत मन जीतहिं जोई,
पाइ ब्रह्म निरवानहि सोई।।२५।।

काम–क्रोध नहिं चितवश जाके,
बसहिं ब्रह्म नित शुचि हिय ताके।
सोइ यति मन रत ब्रह्महि ध्याना,
सबहि ओर तेहि कर निरवाना।।२६।।

धरहि दृष्टि जोइ भृकुटिहि बीचे,
इन्द्रिय विषय वस्तु मन खींचे।
प्राण–अपान नासिका चारी,[१]
करई समान वासना–जारी[२]।।२७।।

करि वश मन–बुधि इन्द्रिय जोई,
मोक्ष परायण नर पुनि होई।
इच्छा–भय सब क्रोधहि त्यागी,
सो मुनि मुक्त होई बड़ भागी।।२८।।

भोक्तारं यज्ञतपसां
सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां
ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।२९।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः।। ५।।

तप-मख भोक्तृ[३] हमहिं सब जाने,
पुनि सब लोकन स्वामिहि माने।
सब प्राणी शुभ चिन्तक मोहीं,
मानि शान्ति पावत यति वोही।।२९।।

निचोड़-

चौपाई-

कृष्ण भाव-भावित[४] जन जोई,
अष्ट योग-फल पावइ सोई।
भक्ति सुमारग, सुगम सदा ही,
कर्म बन्ध, बाँधइ नहिं ताही।।

☆

---

१. चारी =चलनेवालों, भ्रमणशील। २. जारी=नष्ट करके। ३. भोक्तृ =भोग करनेवाला, भोक्ता। ४. प्रभावित, रत।

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।

अनाश्रितः कर्मफलं
कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च
न निरग्निर्न चाक्रियः।।१।।

यं संन्यासमिति प्राहु-
र्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो
योगी भवति कश्चन।।२।।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं
कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव
शमः कारणमुच्यते।।३।।

षष्ठ अध्याय

सन्दर्भ– चौपाई–

जन–तन–अंग करहिं जोइ करमा,सब तन तुष्टि हेतु वह धरमा।
तेहि विधि ईश हेतु जोइ करहीं, तेहि उत्तम योगी सब कहहीं।।
अष्ट–अंग–पद्धति कह जोई, इन्द्रिय–मन–वश–साधन होई।
सब जन हेतु कठिन, यह कामा, ईश्वर हित करि लहि[1] विश्रामा।।

श्री भगवान जी कहनीं

चौपाई–

तज फल करम, करहिं जो करमा,
सोइ सन्यासि–योगि शुचि धरमा।
केवल अगिनि त्याग कर जोई,
परिहरि करम यतीनहिं सोई।।१।।

जेहि सन्यास कहहिं जग लोगू,
अर्जुन! जानहु तुम वह जोगू।
आत्म तृप्ति इच्छा बिनु त्यागे,
योगि–होहिं नहिं जग महुँ आके।।२।।

योगहि साधन मुनि होइ जाके,
फल बिन कर्महिं–कारण ताके।
जेइ आरूढ़ होइ पथ योगा,
काम्य–कर्म–फल त्यागहिं भोगा।।३।।

१. लहि = प्राप्त करना।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु
न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी
योगारूढस्तदोच्यते ।।४।।

उद्धरेदात्मनात्मानं
नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु-
रात्मैव रिपुरात्मनः।।५।।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य
येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे
वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।६।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य
परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु
तथा मानापमानयोः।।७।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा
कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी
समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।८।।

दोहा–

विषय वासना दूर जे,
कर्मासक्त न होइ।
छोड़हि सब संकल्प के,
योगारूढ़हि सोय।।४।।

चौपाई–

निज उद्धार करहिं नर अपने,
आत्म अधोगति करइ न सपने
आपहि शत्रु, मित्र नर आपू,
जगत उदधि[१] उबरइ वह आपू।।५।।

जीत सकहि निज को जन जोई,
बन्धु भाँति वह आपहि होई।
नहि जन-जोइ निजहि पहिचाना,
रिपु सम निज रिपुता कर नाना।।६।।

सुख दुःख और सरद-गरमाई,
मान-अमान समानहि पाई।
निज मन वश होइहि जन जाके,
वसहि ब्रह्म आपहि हिय ताके।।७।।

ज्ञान-विज्ञान-तृप्त-हिय जोही,
विन विकार इन्द्रिय-जित सोही।
कनक-पथर-मृद[१] जाहि समाना,
तेहि यति-मानस-वस भगवाना।।८।।

---

१. उदधि = समुद्र।

सुहृन्मित्रार्युदासीन-
मध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु
समबुद्धिर्विशिष्यते ।।९।।

योगी युञ्जीत सतत-
मात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा
निराशीरपरिग्रहः ।।१०।।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य
स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं
चैलाजिनकुशोत्तरम् ।।११।।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा
यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्या-
द्योगमात्मविशुद्धये ।।१२।।

समं कायशिरोग्रीवं
धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं
दिशश्चानवलोकयन् ।।१३।।

सुहृद् मित्र, वैरी अरु द्वेषी,
पुनि तटस्थ मध्यस्थ विशेषी।
साधु-असाधु[२]-बन्धु मँह जोई,
रह समभाव विशेषहि सोई।।९।।

दोहा-

चित्त आत्म संयम सदा,
आशा-संग्रह हीन।
एकाकी एकान्त रही,
यति ईश्वर में लीन।।१०।।

चौपाई-

शुद्ध भूमि दृढ़ आसन मारी,
कुश, मृगचर्म, वस्त्रमृदु डारी।
नहिं अति ऊँच, न नींचहि होई
आसन समतल भूमिहि सोई।।११।।

तेहि आसन आसीनहि योगी,
इन्द्रिय-चित्त-विषय-वश वोही।।
करहि योग-अभ्यासहि योगी,
अन्तर शोधन हेतु विशेषी।।१२।।

दृढ़करि देह, गला-शिर सीधा,
नाक-अग्र परदृष्टि अडीगा।
अन्य दिशा अवलोकहि नाहीं,
एहि विधि योग करहि यति जाहीं।।१३।।

---

१. मृद = माटी, २. असाधु=पापी

प्रशान्तात्मा विगतभी-
र्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो
युक्त आसीत मत्परः।।१४।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं
योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां
मत्संस्थामधिगच्छति ।।१५।।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य
जाग्रतो नैव चार्जुन।।१६।।

युक्ताहारविहारस्य
युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य
योगो भवति दुःखहा।।१७।।

यदा विनियतं चित्त-
मात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो
युक्त इत्युच्यते तदा।।१८।।

ब्रह्मचारि-व्रत-रत, भयहीना,
अन्तःकरण सुशान्त प्रवीना।
योगी निज मन हमहिं लगावे,
होइ युक्त[१] मोहिं लक्ष्य बनावे।।१४।।

तन-मन-कर्म-नियत[२] मन जोही,
योगाभ्यास करहिं यति सोही।
तन तजि मोर धाम चलि आवे,
परमा[३]-शान्ति तबहि वह पावे।।१५।।

नहिं अति अशन[४] निराशन[५] से ही,
नहिं अति शयन नयन तजि नीदी।
साधि[६] न सकइ पार्थ! यति कोई,
प्रभु समुझावत पारथ-सोई।।१६।।

नियमित अशन[३], अमोद-प्रमोदा,
नींद जागरण सब उद्योगा।
योगाभ्यास हरइ दुःख सारा,
परिमित होइ सकल व्यवहार।।१७।।

यति-वश आत्म चित्त कर जबहीं,
जगत कामना नहिं मन तबहीं।
एहि विधि शुद्ध चेतना जाहीं,
योग - युक्त - योगी - कहलाहीं।।१८।।

---

१. युक्त = वास्तविक योगी, इंश्वर परायण। २. नियत = संयमित मन। ३. परमा-शान्ति= निर्वाण। ४. अशन = भोग। ५. बिना खाये हुए, बिना भोजन के। ६. साधि=साधना

यथा दीपो निवातस्थो
नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य
युञ्जतो योगमात्मनः।।१९।।

यत्रोपरमते चित्तं
निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं
पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।२०।।

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्
बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं
स्थितश्चलति तत्त्वतः।।२१।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं
मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन
गुरुणापि विचाल्यते।।२२।।

तं विद्याद् दुःखसंयोग-
वियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो
योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।२३।।

जस दीपक अविचल निरवाता[१],
तेहि विधि संयम यति हिय आता।
योगि-चित्त उपमा यह होई,
अविचल - मन - परमातम जोई।।१९।।

करि अभ्यास योग के जोई,
मन गति रोकि दिव्य सुख होई।
तब विशुद्ध मन आत्म देखी,
पावइ सेइ जन तुष्टि विशेखी।।२०।।

दोहा-

इन्द्रिय अगोचर ही सदा,
बुद्धि-गम्य जो होय।
योगी जिसमें रम रहे,
तत्त्व भ्रमित नहिं सोय।।२१।।

चौपाई-

जेहि पावत जग नहिं अवशेषा,
नहिं एहि सुख सम अन्य विशेषा।
एहि रस रमत, कठिन दुःख कोई,
विचलित करि न सकत यति सोई।।२२।।

जहँ जग दुःख-संयोग वियोगा,
जेहि के नाम कहत सब योगा।
करि दृढ़ चित्त जो साधक योगी,
सत्य, सिद्ध-साधक यति वोही।।२३।।

---

१. निरवाता = बिना हवा के, निर्वात। २. दिव्य सुख की अनुभूति। ३. उपरान्त

सङ्कल्पप्रभवान्कामां-
स्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं
विनियम्य समन्ततः।।२४।।

शनैः शनैरुपरमेद्
बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा
न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।२५।।

यतो यतो निश्चरति
मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदा-
त्मन्येव वशं नयेत्।।२६।।

प्रशान्तमनसं ह्येनं
योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं
ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।।२७।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं
योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्श-
मत्यन्तं सुखमश्नुते।।२८।।

सबहि छोड़ि संकल्पज कामा,
पूर्ण रुद्ध सब इन्द्रिय–ग्रामा[२]।
सकल कामना साथहि छोड़ी,
सबहिं ओर इन्द्रिय मन मोड़ी।।२४।।

होइ शान्त–मन क्रमशः योगी,
दृढ़ मति करिहि समाधिहि वोही।
नहिं कछु विषय विचारहि आना,
मन महुँ चिन्त्य[१] सतत भगवाना।।२५।।

चंचल मन यह जहँ जहँ जाई,
तेहि तहँ खींचि निजहि वशलाई।
अपने वश महुँ करि मन वोही,
दृढ़मति होइ यती जन सोही।।२६।।

होइ अपाप शान्त मन जाके,
राजस हीन प्रशान्तहिं[१] ताके।
ब्रह्म–भूत पुनि तेहि हिय होई,
पाइ दिव्य सुख निश्चय सोई।।२७।।

एहि विधि पाप–रहित रत योगा,
तेहि परमात्म आत्म संयोगा।
मन अनुभवहि ब्रह्म सुख योगी,
पाइ ब्रह्म–हिय इन्द्रि–अभोगी।।२८।।

१. श्रीकृष्ण भक्ति में स्थित। २. ग्राम = समूह।

सर्वभूतस्थमात्मानं
सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा
सर्वत्र समदर्शनः।।२९।।

यो मां पश्यति सर्वत्र
सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि
स च मे न प्रणश्यति।।३०।।

सर्वभूतस्थितं यो मां
भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि
स योगी मयि वर्तते।।३१।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र
समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं
स योगी परमो मतः।।३२।।

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः
साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि
चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्।।३३।।

जानहिं जीव सकल मुझमें ही,
हमहिं जानि सब जीवहि में ही।
समदरसन सब जगहे जाके,
वसत, सतत ईश्वर हिय ताके।।२९।।

सबहिं विलोकहि मम तन जोही,
पुनि सर्वत्र विलोकहि मोहीं।
तेहि नर से हम विलगउँ नाहीं,
नहिं नर होइ विलग मोहिं पाहीं।।३०।।

जो परमात्म-हमहिं नहिं आना,
एकीभाव जीव-जग जाना।
सकल करम कर भज[2] यति मोहीं,
मम उर सतत वसत यति वोही।।३१।।

सुख-दुख, निज-पर, एक समाना,
पार्थ! सदा सब जीवहि माना।
तेहि से श्रेष्ठ यतीं[1] नहिं आना,
प्रभु समुझावत विविध विधाना।।३२।।

अर्जुन कहलें

पारथ कह मधुसूदन! जोई,
योग विधान हमहिं से सोई।
सुलभ साम्य मति से वह होई,
मैं चञ्चल नहिं देखउ कोई।।३३।।

---

१. प्रशान्त = भगवान की भक्ति में स्थित। २. भज=भजता है, भक्तिपूर्वक सेवा करता है।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण
प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये
वायोरिव सुदुष्करम्।।३४।।

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो
मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय
वैराग्येण च गृह्यते।।३५।।

असंयतात्मना योगो
दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता
शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।।३६।।

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो
योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं
कां गतिं कृष्ण गच्छति।।३७।।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्ट-
श्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो
विमूढो ब्रह्मणः पथि।।३८।।

केशव! मन अति दृढ़ बलवाना,
चपल, प्रमाथ[१] जगत हम जाना।
वशीकरण तेहि दुसकर वइसे,
पवन-वेग अवरोधहि जइसे।।३४।।

श्री भगवान जी कहनीं

कह केशव कुछ संशय नाहीं,
चित-नित चपल कठिन वश आहीं।
पर कौन्तेय! होइ बश में ही,
एहि अभिआस विरागहि से ही।।३५।।

जेहि मन वश-नहिं, तेहि सब लोगू,
मिलहिं न सहज कठिन यह जोगू।
मन वश करि नर यतन जो करहीं,
मिलहिं सहज तेहि मति अस हमहीं।।३६।।

अर्जुन कहलें

दोहा- विचलित योग, यतन नहीं,
पर श्रद्धा तेहि होय।
योग सिद्धि नर नहिं मिले,
केहि गति लहि[२] नर सोय।।३७।।

मूढ[३] अनाश्रित[४], ब्रह्मपथ[५],
उभय[६] भाँति विछिलाई[७]।
छिन्न-भिन्न घन सम नहीं,
सोइ विनसत महबाहु।।३८।।

---

१. प्रमाथ जो विचलित कर दे। २. लहि = प्राप्त करता है। ३. मूढ़ = मोहग्रस्त, ४. अनाश्रित =विना किसी पद के, ५. ब्रह्मपथ = भगवत्प्राप्ति के मार्ग में, ६. उभय-भाँति=आध्यात्मिक व भौतिक सफलताओं से, ७. विछिलाइ = च्युत होना, प्रथभ्रष्ट होना।

एतन्मे संशयं कृष्ण
छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य
छेत्ता न ह्युपपद्यते।।३९।।

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र
विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्
दुर्गतिं तात गच्छति।।४०।।

प्राप्य पुण्यकृतां लोका-
नुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे
योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।४१।।

अथवा योगिनामेव
कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं
लोके जन्म यदीदृशम्।।४२।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं
लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः
संसिद्धौ कुरुनन्दन।।४३।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव

चौपाई–

छेदन, मन–संशयहि अशेषा,
प्रभु समरथ सब भाँति विशेषा।
तुमहिं विहाइ जगत नहिं कोई,
यह संशय भेदन कर जोई।।३९।।

श्री भगवान जी कहनीं

उभय लोक तेहि होइ न नाशा,
शुभ कारजरत कर विशवासा।
कर कल्याण–कर्म जन जेही,
पार्थ! पराजय होइ न तेही।।४०।।

योगभ्रष्ट यति शुचिकृत[१] लोका,
वर्ष अनेक करइ बहुभोगा।
श्री सम्पन्न भवन पुनि सेही,
अथवा शुचि–सुधि घर जनमे ही।।४१।।

अथवा जनमहिं यति कुल जाई,
परम सुधीजन संगति पाई।
एहि विधि जनम सुलभ जग नाहीं,
कहहिं कृष्ण प्रिय पारथ पाहीं।।४२।।

पूर्व बुद्धि संयोगहि–लाभा,
वह नर रतन[२] जनम शुचि पाता।
तेहि बल कुरुनन्दन वह योगी,
करत प्रयास अधिकतम सोही।।४३।।

---

१. शुचिकृत लोका = शुभकर्म करने वालों का लोक, २. रतन = रत्न

ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य
शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।४४।।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु
योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्ध-
स्ततोयाति परां गतिम्।।४५।।

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन।।४६।।

योगिनामपि सर्वेषां
मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां
स मे युक्ततमो मतः।।४७।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः।। ६।।

●

पूर्व जन्म कृत जोइ अभ्यासा,
तेहि बल आकर्षित अनयासा[१]।
होइ जिज्ञासु योग प्रति सोई,
वेद-कथित विधि पारहि होई।।४४।।

अति अभ्यास-प्रयास किये ही,
होइ विमल मति किल्बिष[२] से ही
जनम-जनम यति यतन किये ही,
अन्त परम गति पावत ते ही।।४५।।

कठिन तपस्वि-शास्त्रविद् जो ही,
सफल करम करहीं नर सो ही।
योगि, श्रेष्ठ जन सबहि अशेषा,
अर्जुन! बन तुम योगि विशेषा।।४६।।

दोहा-

सकल योगिमहुँ श्रेष्ठ जो,
श्रद्धा-संयुत होय।
अन्तर्मन नित जपत मोहीं,
पूज्य यती जग सोय।।४७।।

निचोड़-

भाग्यशालिजन वेद-विधाना, निज उर ध्यावहिं नित, भगवाना।
घन श्यामल तन सुन्दर श्यामा जलजानन रवि-रश्मि-निधाना।
नृहरि, राम वराहन होई, प्रकटहिं कृष्ण, भजहिं यति सोई।
ध्यान-विधान अनुत्तम सबहीं समरभूमि प्रभु-पारथ कहहीं।।

षष्ठोऽध्यायः।। ६।।

●

---

१. सहजता से ही। २. किल्बिष = कल्मष = पाप कर्म प्रकरता = कर्ता।

।।अथ सप्तमोऽध्यायः।।

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ
योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां
यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।।१।।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञान-
मिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्य-
ज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।२।।

मनुष्याणां सहस्रेषु
कश्चिद्यतति सिद्धये।
यतामपि सिद्धानां
कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।३।।

सप्तम अध्याय

संदर्भ –

दोहा– एहि सतवें अध्याय में, कृष्ण भाव के ज्ञान,
सकल विभूति समेत ही, प्रगटत श्रीभगवान।।

चौपाई–

भाग्यशालि नर चारि प्रकारा, कृष्ण हेतु अरपित कर सारा।
पुनि नर चारि भाँति जग होहीं, हरि से विमुख सदा रह जोहीं।।

श्री भगवान जी कहनीं

दोहा– हरि बोले पारथ! सुनो,
मुझमें मन कर लीन।
कैसे तुम समझो मुझे,
बन सब संशय हीन।।१।।

तत्त्वज्ञान से तथ्य को,
सहित पूर्ण विज्ञान।
जेहि जाने नहिं शेष कछू,
सत्ययोग वह जान।।२।।

चौपाई–

कइ सहस्त्र मानव महुँ एकू,
करहि यतन मोहि पावन हेतू।
सतत यतन–रत यति महुँ कोई,
तत्त्व रूप जानत मोहिं सोई।।३।।

भूमिरापोऽनलो वायुः
खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे
भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।४।।

अपरेयमितस्त्वन्यां
प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो
ययेदं धार्यते जगत्।।५।।

एतद्योनीनि भूतानि
सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः
प्रभवः प्रलयस्तथा।।६।।

मत्तः परतरं नान्य-
त्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं
सूत्रे मणिगणा इव।।७।।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय
प्रभास्मि शशिसूर्योः।
प्रणवः सर्ववेदेषु
शब्दः खे पौरुषं नृषु।।८।।

भूमि अनल-जल-वायु अकासा,
अहंकार - मन - बुद्धि विकासा।
वसु[१] विभक्त यह प्रकृति हमारी,
एहि विधि तोहिं बतावउँ सारी।।४।।

'अपरा' जानहु प्रकृति हमारी,
कहहुँ 'परा' पुनि तोहिं विचारी।
शक्ति 'परा' यह जीवहि सारा,
जोइ सकल जग जीव-अधारा।।५।।

प्रकृति द्वयज जग जीवहिं सारे,
अर्जुन! जानहु वचन हमारे।
प्रभव[२]-प्रलय[३], कारण मोहिं जानो,
सकल लोक मूलहिं पुनि मानो।।६।।

हमहिं अपर[४] जग-कारण नाहीं,
कहउँ तथ्य पारथ! तोहि पाहीं।
मणि-गण वद्ध-सूत्र महुँ जैसे,
मोहिं गुथित सब लोकहि वैसे।।७।।

अर्जुन! हम जल में रस भाँती,
रवि-शशि महुँ जस रश्मि समाती।
श्रुति महुँ प्रणव मोहि नित जानो,
नभ-ध्वनि[५], पौरुष[६] नर महुँ मानो।।८।।

---

१. वसु = आठ (८), २. प्रभव=उत्पत्ति, ३. प्रलय=संहार, विनाश, ४. अपर=दूसरा, अन्य।
५. नभ-ध्वनि=आकाश में ध्वनि स्वरूप, २६. पौरुष=पुरुषार्थ

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च
तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु
तपश्चास्मि तपस्विषु।।९।।

बीजं मां सर्वभूतानां
विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि
तेजस्तेजस्विनामहम् ।।१०।।

बलं बलवतां चाहं
कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु
कामोऽस्मि भरतर्षभ।।११।।

ये चैव सात्त्विका भावा
राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि
न त्वहं तेषु ते मयि।।१२।।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावै-
रेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति
मामेभ्यः परमव्ययम्।।१३।।

भू–महुँ गन्ध, अग्नि महुँ तेजू,
सकल जीव–जीवन के हेतू।
तापस–जन महुँ तप हम हीं तो,
सकल लोकमहुँ हम सबहीं तो।।९।।

जीव सनातन–बीज अधारा,
तपसि[1]–तेज, बुध–बुद्धि अपारा।
अर्जुन! जानहु एहि विधि मोहीं,
हम एहि सत्य बतावउँ तोहीं।।१०।।

नहिं कछु काम राग, मोहिं पाहीं,
हम बल होउँ बलीजन माहीं।
हम अनुकूल सभी–जनधर्मा,
भारत श्रेष्ठ! हमहिं शुचि[2] कर्मा।।११।।

सत–रज–तम सबही हमहीं से,
सबहिं हमहिं हम विलग सभी से।
एहि प्रकार जानहु तुम मोहीं,
हम नहिं तेहि, हमहिं नहि वो ही।।१२।।

त्रिगुण भाव मूलहि संसारा,
सत–रज–तामस तीन प्रकारा।
सकल जीव मोहित जगमाँहीं,
गुणातीत–मोहिं, जानत नाहीं।।१३।।

---

१. तपसि= तेजस्वियों का तेज, २. शुचि = शास्त्रानुकूल, शास्त्रसम्मत।

दैवी ह्येषा गुणमयी
मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते
मायामेतां तरन्ति ते।।१४।।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः
प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना
आसुरं भावमाश्रिताः।।१५।।

चतुर्विधा भजन्ते मां
जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी
ज्ञानी च भरतर्षभ।।१६।।

तेषां ज्ञानी नित्युयुक्त
एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थ-
महं स च मम प्रियः।।१७।।

उदाराः सर्व एवैते
ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा
मामेवानुत्तमां गतिम्।।१८।।

सबहिं अगम्य, अपारहि सोई,
यह त्रिगुणा माया मम होई।
पर जन जोहि भजत नित मोहीं,
येहि संसार पारतर सोही।।१४।।

दोहा- माया हृत जेहि ज्ञान सब,
बुद्धि आसुरी होय।
सोइ नराधम मूढ़ जन,
मोहिं भजत नहिं ज़ोय।।१५।।

पार्थ! सुकृत[१]-जंन चार प्रकारा,
भारत! मोहिं भजत जग सारा।
कछु जिज्ञासु, आर्तजन कोई,
कछु धन-लाभ ज्ञान हित होई।।१६।।

तेहि महुँ ज्ञानि, सतत-रत मोहीं,
प्रेम भक्ति युत-उत्तम सोहीं।
तत्त्व रूप मोहि जानहि जोई,
मैं प्रिय तेहि, मोहिं प्रिय सोई।।१७।।

मोहिं समान सब ज्ञानि-उदारा,
पावत जोइ शुभ ज्ञान हमारा।
सतत भजनरत सेवत मोहीं,
उच्च परम गति पावहिं सोही।।१८।।

१. सुकृत ज़न = पूण्यात्मा लोग।

बहूनां जन्मनामन्ते
ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स
महात्मा सुदुर्लभः।।१९।।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः
प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय
प्रकृत्या नियताः स्वया।।२०।।

यो यो यां यां तनुं भक्तः
श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां
तामेव विदधाम्यहम्।।२१।।

स तया श्रद्धया युक्त-
स्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामा-
न्मयैव विहितान्हि तान्।।२२।।

अन्तवत्तु फलं तेषां
तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति
मद्भक्ता यान्ति मामपि।।२३।।

जनम-जनम अर्जित कर ज्ञाना,
वसुदेवहि मानहिं भगवाना।
एहि विधि मोंहि भजत जन जोही,
महा-मना अति दुर्लभ सोही।।१९।।

तेहि-तेहि भोग काम वश तेही,
सब हृत ज्ञान तेहि जन केही।
होइ निज भावहि प्रेरित वोही,
भजहिं अन्य सब देवन को ही।।२०।।

जोइ, जोइ जेहि-जेहि पूजहिं देवा,
करहिं सप्रेम-भगति अरु सेवा।
तेहि-तेहि भगति करउ तेहि माहीं,
श्रद्धा-प्रीति अचल तेहि पाहीं।।२१।।

पूजि सबहिं उन देवन को ही,
श्रद्धा-भक्ति सहित मन वोही।
सकल विधान विहित हमही से,
पाइ इष्ट फल देवन ही से।।२२।।

दोहा-

सबहि मन्द-मति नर उहे,
नाशवान फल पाय।
सुर-सुर में, मोहिं-मोहिं में,
अन्त मिलहिं सब आय।।२३।।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं
मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो
ममाव्ययमनुत्तमम् ।।२४।।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य
योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति
लोको मामजमव्ययम्।।२५।।

वेदाहं समतीतानि
वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि
मां तु वेद न कश्चन।।२६।।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन
द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं
सर्गे यान्ति परन्तप।।२७।।

येषां त्वन्तगतं पापं
जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता
भजन्ते मां दृढव्रताः।।२८।।

मोहिं अविनाशि, अनुत्तम,
व्यक्त, मूढ़ मति मान।
हमहिं सच्चिदानन्द को,
सोइ सकइ नहिं जान।।२४।।

चौपाई–

निज मायावश आवृत होई,
नहिं प्रगटऊँ तन दिव्यहि सोई।
हमहिं सनातन ईश्वर को ही।
मूढ़ सकल जानहिं नहिं वोही।।२५।।

छन्द छप्पय–

होइहिं, भयउ, हैं, जीव जग,
यह सत्य हम सब जानिहौं।
जानउँ इन्हहिं अर्जुन! सभी,
जन मोहिं नहिं पहिचानिहौं।।२६।।

उतपन्न इच्छा कलुष तन,
एहि द्वन्द्व भारत! जोइ इहाँ।
सुख-दुःख माया, भ्रमितमन,
प्राणी परन्तप! होइ इहाँ।।२७।।

पर सुकृत जन-सब जगत महुँ,
गत कलुष निर्मल जोइ बनें।
दृढ़, राग-द्वेष-विहीन तन-मन,
भक्त बन मोंहिको भजें।।२८।।

जरामरणमोक्षाय
मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्न–
मध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।२९।।

साधिभूताधिदैवं मां
साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां
ते विदुर्युक्तचेतसः।।३०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः।। ७।।

दोहा–

जरा–मरण से मुक्ति के,
जतन करहिं जन जोय।
होइ मोरि–शरणागत–
ब्रह्म–धर्म–विद् सोय।।२९।।

जोहि अखिल जग जीव मख,
जानि नियामक मोहिं।
अन्त समय मन हमहिं रत,
हमहिं पाइ जन वोहि।।३०।।

विमर्श–

शुद्धा भक्तिहि कृष्ण में, श्रवण, ज्ञान, मन मोद।
तेहि के मन दृढ़ आश अब, मिलिहहिं सकल प्रमोद।।

सम्पूर्णोऽयमध्यायः

●

।।अथ अष्टमोऽध्यायः।।

अर्जुन उवाच

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं
किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्त-
मधिदैवं किमुच्यते।।१।।

अधियज्ञः कथं कोऽत्र
देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं
ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।।२।।

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं
स्वभावोऽध्यात्मुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो
विसर्गः कर्मसंज्ञितः।।३।।

अधिभूतं क्षरो भावः
पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र
देहे देहभृतां वर।।४।।

अष्टम अध्याय

सन्दर्भ–

अर्जुन हरि से पूछते, ब्रह्म केहि जग मान।
प्रार्थ–प्रश्न – उत्तर कहेउ, परमेश्वर भगवान।।

अर्जुन कहलें

चौपाई–

केहि अध्यात्म, ब्रह्म, यह केही,
कर्म काहि अधिभूतहि केही।
अधिदैवहि कह जग जन कोही,
पुरुषोत्तम समुझावहु मोही।।१।।

एहि तन महुँ अधियज्ञहि कइसे,
सोइ राजत एहिगातहिं कइसे।
कस, केशव! संयत मन जोही,
अन्त काल पहचानत तोही।।२।।

श्रीभगवान जी कहनीं

अक्षर, परम ब्रह्म नित होई,
निज स्वरूप अध्यातम सोई।
भूत–भाव कारक जोइ कामा,
तेहि के होइ 'कर्म' यह नामा।।३।।

दोहा–

अधिभूतहि क्षर भाव ह,
महापुरुष अधिदैव।
अर्जुन! देही देह महुँ,
आधि यज्ञ वसुदैव।।४।।

---

१. देही = शरीरी = मनुष्य।

अन्तकाले च मामेव
स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं
याति नास्त्यत्र संशयः।।५।।

यं यं वापि स्मरन्भावं
त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय
सदा तद्भावभावितः।।६।।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु
मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धि-
र्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।७।।

अभ्यासयोगयुक्तेन
चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं
याति पार्थानुचिन्तयन्।।८।।

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।९।।

चौपाई–

ध्यान हमार धारि जन जोही,
त्यागहि तन वह पावत मोंही।
संशय-रहित अवशि यह होई,
हमहिं मिलहि नर मर कर सोई।।५।।

जोहि भाव-भावित नर कोई,
अन्तकाल तन त्यागत सोई।
सोइ रंग रञ्जित नर वोही,
अर्जुन! पाव, भाव नर सोही।।६।।

एहि कारण पारथ! मम ध्याना,
प्रतिपल करि, कर समर विधाना।
मन, वच, काय समर्पित होहीं,
करहु युद्ध, तुम पावइ मोहीं।।७।।

जोइ अभ्यास-बलहि-युत योगी,
ईश्वर महुँ दृढ़ चित्त अभोगी।
अविचल मन चिन्तन कर जोही,
दिव्य परम पुरु[१] पावहिं वोही।।८।।

सोइ सर्वज्ञ अनादि नियन्ता,
परम सूक्ष्म पोषक-भगवन्ता।
रवि-सम-तम दूरइ कर जोही।
ध्यावहिं नित्य अचिंत्यहि मोहीं।।९।।

१. पुरु = पुरुष।

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।१०।।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये।।११।।

सर्वद्वाराणि संयम्य
मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राण-
मास्थितो योगधारणाम्।।१२।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म
व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं
स याति परमां गतिम्।।१३।।

अनन्यचेताः सततं यो
मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ
नित्युक्तस्य योगिनः।।१४।।

अन्त काल योगहि बलखींची,
प्राण करहिं यति भृकुटिहि बीची।
भक्ति सहित अविचल मन ध्याना,
पाइ पुरुष उत्तम भगवाना।।१०।।

कहहिं वेद-विद जेहि अविनाशी,
जेहि तजराग जाँहि सन्यासी।
चाहहिं जेहि सदा ब्रह्मचारी,
सोइ-पद, तोहि, कहुँ स्वल्प विचारी।।११।।

साधि इन्द्रि हृदि[1] दृढ़-मन होई,
करहि धारणा योगहि सोई।
पुनि मुरधामहुँ प्राण जमाई,
अविचल-मन यति ध्यान लगाई।।१२।।

ध्यान हमार सतत कर देहीं[2],
अन्त काल जब आवत तेही।
'ओमिति' मन्त्र जपत मन लाई,
तजि तन सोइ परम पद पाई।।१३।।

अर्जुन! जोइ जपत जन मोहीं,
दृढ़-मन-होइ सतत रत सोही।
तेहि यति हेतु, सुलभ हम सबहीं,
पावत वह नर सहजहि हमहीं।।१४।।

१. हृदि = हृदय में, २. देही = देहधारी, मनुष्य।

मामुपेत्य पुनर्जन्म
दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः
संसिद्धिं परमां गताः।।१५।।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः
पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय
पुनर्जन्म न विद्यते।।१६।।

सहस्त्रयुगपर्यन्त-
महर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां
तेऽहोरात्रविदो जनाः।।१७।।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः
प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते
तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।१८।।

भूतग्रामः स एवायं
भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ
प्रभवत्यहरागमे ।।१९।।

दोहा–

परम–सिद्धि को प्राप्त जो,
महापुरुष जग माहिं।
क्षणभङ्गुर दुःख भवन में,
पुनर्जन्म नहिं पाहिं।।१५।।

ब्रह्मलोक तक जाइ जोई,
पाइ जनम एहि लोक।
पर पारथ! मोहिं पाइ जो,
पुनि–तेहि जनम न होत।।१६।।

दिवस–रात जोइ ब्रह्म की,
युग सहस्र बड़ मान।
सोइ पुरुष दिन रैन की,
गति अति उत्तम जान।।१७।।

चौपाई–

जबहिं दिवस अव्यक्तहि क़े ही,
होहिं व्यक्त सब जीव तभी ही।
पुनि जब राति ब्रह्म की होई,
तबहिं अव्यक्त[1] विलीनहि सोई।।१८।।

अर्जुन! भूत संघ[2] सब तेही,
प्रकृति–विवश जनमत जग एही।।
रात्रि–प्रवेश समय होइ लीना,
दिन प्रवेश–क्षण होइ नवीना[3]।।१९।।

१. अव्यक्त = परमात्मा। २. जन समूह, लोग, ३. नवीना=नूतन जन्मधारी,

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽ-
व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु
नश्यत्सु न विनश्यति।।२०।।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्त-
स्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते
तद्धाम परमं मम।।२१।।

पुरुषः स परः पार्थ
भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि
येन सर्वमिदं ततम्।।२२।।

यत्र काले त्वनावृत्ति-
मावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं
वक्ष्यामि भरतर्षभ।।२३।।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः
षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति
ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।२४।।

तेहि ते अपर सनातन भावा,
भाव अव्यक्त जोई कहलावा।
परा शक्ति रह नित्यहि सोई,
सृष्टि-विनाश-नाश नहिं कोई।।२०।।

जेइ अव्यक्त-'अछर'[१] अस नामा,
कहहिं परम गति जाहि सुजाना।
जेहि पावत लवटत नहिं कोई,
परम धाम मम उत्तम सोई।।२१।।

सकल जीव-जग व्यापहि जोही,
सकल लोक व्यापहि हरि वोही।
पारथ! सुलभ भगति से होई,
यह रहस्य जानत यति[२], सोई।।२२।।

सुनहु काल[३] सोइ-तन तज देही,
जेहि महुँ लवटत यति नहिं वे ही।
पुनः काल सोइ तुमहिं बताउँ,
नर, मर-कर आवत एहि ठाउँ।।२३।।

दिन, पावक, ज्वाला, शशिवासा[४],
उत्तर-अयन भानु छव मासा।
निज-तन-त्यागि ब्रह्म-विद जाहीं,
परम-लक्ष्य, निज ब्रह्महिं पाहीं।।२४।।

---

१. अछर = अक्षर, जिसका नाश न हो। २. यति = योगी, साधक। ३. काल = गति,
४. शशिवासा = शुक्लपक्ष

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः
षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योति-
र्योगी प्राप्य निवर्तते।।२५।।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते
जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्ति-
मन्यययावर्तते पुनः।।२६।।

नैते सृती पार्थ जानन्-
योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु
योगयुक्तो भवार्जुन।।२७।।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।।२८।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः।। ८।।

●

असित[१] धूम[२] यम अयनहि[३] जोई,
ऋतु[४] मासहि घूमत रवि सोई।
यति पावत शशि लोक-विशाला,
पुनि आवत भव त्रास कराला।।२५।।

दोहा-

शुक्ल, कृष्ण गति दोइ नित,
सुधि एहि जगत जनाइ।
मुक्ति-प्रदा पहली गती,
एहि जग-दूसरि आइ।।२६।।

छन्द-छप्पय-

एहि भाँति गति दोउ जानि, यति,
नहिं मोह महुँ कहुँ वह पड़े।
इस हेतु अर्जुन! सतत-रत
मोंहि प्राप्ति के साधन करे।।२७।।

जे पुण्य-फल, कह वेद मख,
तप-दान आदि विधान से।
सब छोड़ि पावइ परम पद-
योगी पुरुष एहि ज्ञान से।।२८।।

निचोड़-

भगत संगती भगति दिलाई, भगति प्रभावहि-ईश्वर पाई।
रूपनाम लीलादिक-सारे पावत ईश सकल भ्रम टारे।।

सम्पूर्णोऽयमध्यायः

---

१. असित = कृष्णपक्ष, २. धूम = धूममार्ग से गया हुआ, धुआं, ३. यम-अयन दक्षिणायन, ४. छः माह तक।

।।अथ नवमोऽध्यायः।।

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं
प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं
यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।१।।

राजविद्या राजगुह्यं
पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं
सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।२।।

अश्रद्दधानाः पुरुषा
धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते
मृत्युसंसारवर्त्मनि ।।३।।

नवम अध्याय

सन्दर्भ–

एहि नउवाँ अध्याय में, परम गुह्य जे ज्ञान।
नव प्रकार की भगति के, समुझावत भगवान।।

श्रीभगवान जी कहनीं

दोहा– ज्ञान सहित–विज्ञान के,
गुप्त पार्थ! अति जोय।
तुम असूय[1] से कहउँ सब–
अशुभ–मुक्त जेहि होय।।१।।

ज्ञान सहित विज्ञान यह,
सब विद्या पति होय।
शीघ्र फलद उत्तम यह,
धर्म्य[2], सुखद नित[3] जोय।।२।।

चौपाई–

श्रद्धा, धर्म–रहित नर जोही,
पाइ न सकहि परंतप! मोही।
बिन पावत मोहिं लौटत वोही,
मर्त्य–लोक घूमत रह सोही।।३।।

---

१. असूय= अदोषदर्शी, २. धर्मयुक्त ३. अविनाशी

मया ततमिदं सर्वं
जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि
न चाहं तेष्ववस्थितः।।४।।

न च मत्स्थानि भूतानि
पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो
ममात्मा भूतभावनः।।५।।

यथाकाशस्थितो नित्यं
वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि
मत्स्थानीत्युपधारय ।।६।।

सर्वभूतानि कौन्तेय
प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि
कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।७।।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य
विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्रामिमं कृत्स्नम-
वशं प्रकृतेर्वशात्।।८।।

मोर अव्यक्त रूप सब लोका,
रहऊँ व्याप्त मैं भोग-अभोगा।
सकल जीव जग मोहिं समाहीं,
तेहि तनु, किन्तु वसहुँ हम नाहीं।।४।।

सृष्टि समस्त न वस तन मेरे,
देखहु योग - प्रभाव - घनेरे[१]।
प्रकट करउँ, पालउँ हम वोही,
किन्तु लगाव न कछु तेहि मोहीं।।५।।

विचरत मरुत सकल नभ जइसे,
पर नहिं होय पार नभ जइसे।
जानहु सब जग वश मोहि तइसे,
नभ भीतर मारुत सोइ जइसे।।६।।

कल्प-अन्त महुँ प्रकृति हमारी,
होइ विलीन सृष्टि यह सारी।
कल्पारम्भ पुनः जब होई,
मैं पुनि रचउँ जगत यह सोई।।७।।

अविकल[२] सृष्टि स्वतन्त्र कभी ना,
करउँ सबहि निज प्रकृति अधीना।
तेहि सब जीव कर्म अनुरूपा-
बार-बार तेहि रचउँ सरूपा।।८।।

---

१. घनेरे = ईश्वरीय योगशक्ति का प्रभाव २. अविकल = सम्पूर्ण,

न च मां तानि कर्माणि
निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीन-
मसक्तं तेषु कर्मसु।।९।।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः
सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय
जगद्विपरिवर्तते ।।१०।।

अवजान्ति मां मूढा
मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो
मम भूतमहेश्वरम्।।११।।

मोघाशा मोघकर्माणो
मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव
प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।१२।।

महात्मानस्तु मां पार्थ
दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो
ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।१३।।

कर्मबन्ध मैं बधउँ न कबहीं,
पार्थ! सुनहु समुझावउँ सबहीं।
उदासीन आसक्ति-विहीना,
मोहिं कर्म सकि बाँधि कभी ना।।९।।

पा, अधिकार प्रकृति सब हमरे,
रचइ चराचर लोकहि, सगरे।
एहिकारण जग फिरकी[1] भाँती
फिरत चराचर यह दिन राती।।१०।।

जीव-ईश मैं, नहिं जग जाने,
हमहिं मूढ़मति-मानव माने।
नरतन धरि जब करउँ प्रकाशा,
करहिं मूर्ख सब मम उपहासा।।११।।

विरथा आश, व्यर्थ सब करमा,
व्यर्थ ज्ञान, चित-आसुरि धरमा।
मोहग्रस्त राक्षसि तेहि भावा
मुक्ति आश सब विफल बनावा।१२।।

दैवी प्रकृति, समाश्रित[2] जोही,
जानत मोहिं सनातन वोही।
सकल जीव, जग-कारण मोहीं,
मानि पार्थ! नित, भज जन सोही।।१३।।

---

१. फिरकी = कागज का नचौना, जिसे बच्चे खेलते हैं। २. समाश्रित = शरणागत

सततं कीर्तयन्तो मां
यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या
नित्ययुक्ता उपासते।।१४।।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये
यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन
बहुधा विश्वतोमुखम्।।१५।।

अहं क्रतुरहं यज्ञः
स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्य-
महमग्निरहं हुतम्।।१६।।

पिताहमस्य जगतो
माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार
ऋक्साम यजुरेव च।।१७।।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी
निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं
निधानं बीजमव्ययम्।।१८।।

कीर्तन करहिं, सुदृढ़-व्रत धारे,
भक्ति सहित मम नाम उचारे।
विविध यतन, वन्दन आचरहीं,
मोहिं धरि ध्यान उपासना करहीं।।१४।।

कछु जन भेद[१], अभेदहिं[२] जानी,
कुछ ज्ञानी निरगुन मोहिं मानी।
बहुधा विश्वमुखी यति जाने,
पूजहिं, परमेश्वर मोहिं माने।।१५।।

हम क्रतु, यज्ञ, स्वधा शुचि सोऊ,
औषधि, मन्त्र, आज्य[३] सम होऊँ।
हम वैश्वानर हवन - स्वरूपा,
जानहु पारथ! मोहिं अनूपा।।१६।।

हम धाता, धारक, जग-सारा,
सकल करमफल करुँ विसतारा।
माता-पिता, पितामह, ज्ञेया[४],
वेद-प्रणव सब साधक धेया[५]।।१७।।

दोहा- पोषक, उद्भव, लय, गती,
स्वामी मित्र, निधान।
धाम, शरण, कारण जगत,
अव्यय हम भगवान्।।१८।।

---

१. भेद = द्वैत, २. अभेद = अद्वैत, ३. आज्य = घृत, ४. ज्ञेया = जानने योग्य। ५. धेया = ध्यान करने योग्य

तपाम्यहमहं वर्षं
निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च
सदसच्चाहमर्जुन ।।१९।।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा-
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।२०।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।।२१।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योगक्षेमं वहाम्यहम्।।२२।।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता
यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय
यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।२३।।

ताप करउँ, जलवर्षण,
करउँ रोध वरसात।
सुधा-मृत्यु सत्-असत् भी,
पार्थ! हमहिं एक साथ।।१९।।

छन्द छप्पय-

पढ़हिं तीनहुँ वेद सुधि, पुनि पान सोमहि जोइ करें।
सुरलोक-कामी सबहिं यति, पूजा हमारी सोइ करें।
होइ शुद्ध ही सब पाप से, देवेन्द्र-स्वर्गिक लोक में,
तेइ जनम पावहिं देव सम, होइहिं मगन सुर-मोद में।।२०।।

पा, संकल सुख सुरभोग, तेहि सुरलोक उच्च, विशाल में
पुनि पुन्य-क्षय के गिरि पड़े, इस जगत के जंजाल में।
वेदत्रयी सिद्धान्त महुँ-दृढ़, काम-कामी जे बने,
आवागमन के चक्र भी, सोइ सिद्ध साधक के मिले।।२१।।

चौपाई-

जोइ जन हमहिं भज़हिं सब काला,
योग[१] क्षेम[२] तेहि करउँ निहाला।
भाव अनन्य भजन कर मोहीं,
हम जग करम सम्हारउँ वोही।।२२।।

श्रद्धा-लीन, नित्य नर जोही,
यदपि अपर सुर पूजहिं सोही।
सोउ नर पूजत पारथ! हमहीं,
विधि-विहीन, पर[३] पूजन सबहीं।।२३।।

---

१. योग=जीवन की सारी आवश्यकता में, २. क्षेम=रक्षण, सततरक्षा, रखवारी। ३. किन्तु

अहं हि सर्वयज्ञानां
भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति
तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।।२४।।

यान्ति देवव्रता देवान्-
पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या
यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।२५।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं
यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृत-
मश्नामि प्रयतात्मनः।।२६।।

यत्करोषि यदश्नासि
यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय
तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।२७।।

शुभाशुभफलैरेवं
मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा
विमुक्तो मामुपैष्यसि।।२८।।

हमहिं स्वामि मष[१], भोग निहारा,
नर, नहिं जानहिं तत्त्व[२] हमारा।
एहि कारण तेहि गति नहिं होई,
पुनर्जन्म पावहिं भर-सोई।।२४।।

सुर-पूजत जाइहि सुरलोका,
पितर पूंजि पावहिं तेहि लोका।
भूत-पूजि भूतहि को पावे,
हमहिं यजत[३] नर मम गृह आवे।।२५।।

श्रद्धा-भक्ति सहित नर जेई,
फल-फुल-पत्र, तोय[४] मोहिं देई।
तेहि प्रदत्त फल फूलन हमहीं,
खाउँ, सगुण-तन धारहि सबहीं।।२६।।

तप-व्रत-दान-हवन कर जोही,
अर्जुन! करहु समर्पित मोही।
भोजनादि सब कर्म विधाना,
करु अरपित सब मोहिं भगवाना।।२७।।

अस शुभ-अशुभ फलप्रद जोही,
करम बाँध बाँधहि नहिं तोही।
थिर चित योग युक्त संन्यासा,
मोहिं सँग करउ निरन्तर वासा।।२८।।

१. मष=यज्ञ, २.तत्त्व= रहस्य, सच्चाई, ३. यजत = पूजा करते हुए, ४. तोय जल।

समोऽहं सर्वभूतेषु
न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या
मयि ते तेषु चाप्यहम्।।२९।।

अपि चेत्सुदुराचारो
भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः
सम्यग्व्यवसितो हि सः।।३०।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा
शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि
न मे भक्तः प्रणश्यति।।३१।।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य
येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा-
स्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।३२।।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या
भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोक-
मिमं प्राप्य भजस्व माम्।।३३।।

सबहि जीव व्यापउँ समभावा,
नहिं प्रिय कोउ, न कोउ दुरावा।
पर जोइ भजत, भगति मन मोहीं,
सोइ वस मोहिं, हमहुँ वस सोही।।२९।।

अतिशय दुष्ट यदपि जन होई,
भाव-अनन्य मोहिं जप सोई।
दृढ़मति, मान्यहिं[१] साधु समाना,
ईश भजन सम नहिं कछु आना।।३०।।

धर्मशील मति शीघ्रहि होई,
परम-शान्ति पावहि नर सोई।
अर्जुन! जानु सत्य यह सारा,
भक्त, नष्ट नहिं होय हमारा।।३१।।

नारी, शूद्र, वैश्य, अघजाती,
जेहि-मति मोर सुभगति समाती।
सोइ सब होइ शरण मम जबहीं,
अर्जुन! पाइ परम गति तबहीं।।३२।।

तब[२] का कथन, विप्र, ऋषि, राजा,
पुण्यशील सब भगत समाजा।
सुख-विहीन क्षणभंगुर दे ही-
पाइ भजहु तुम सतत हमें ही।।३३।।

---

१. मान्य=मानने योग्य, मन्तव्य। २. नीच कुल में उत्पन्न।

मन्मना भव मद्भक्तो
मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव-
मात्मानं मत्परायणः।।३४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः।।९।।

दोहा–

हमहिं–चित्त कर भक्त बनु,
पूजहू करहु प्रणाम।
हमहिं परायण होइके,
प्राप्त करहु मम धाम।।३४।।

निचोड़–

कीर्तन श्रवण, सुचिन्तन, सेवा, पादामृत सेवन कर–लेवा।
अर्चन वन्दन सख्य विचारा, आत्म समर्पण कर यति सारा।
ईरिखा भाव रखहि जन जोई, तेहि के जनम अकारथ होई।
भक्ति सहित करि हरि सेवकाई, पापहि–रत उत्तम पद पाई।।

सम्पूर्णोऽयमध्यायः

।।अथ दशमोऽध्यायः।।

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो
शृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय
वक्ष्यामि हितकाम्यया।।१।।

न मे विदुः सुरगणाः
प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां
महर्षीणां च सर्वशः।।२।।

यो मामजमनादिं च
वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु
सर्वपापैः प्रमुच्यते।।३।।

।। दशम अध्याय ।।

सन्दर्भ–

चौपाई–

पूर्ण शक्ति, यश, धन, अरु ज्ञाना
पूर्ण त्याग युत–वह भगवाना।
छव[1] विभूति अर्जुनहि दिखाये,
तेहिते कृष्ण ईश कहलाये।।

श्रीभगवान जी कहनीं

चौपाई–

सुन महबाहु! कहत भगवाना,
कहहुँ अनुत्तम वचन प्रमाना।
अतिशय प्रेम तोहि मन होई,
हितकर वचन कहउँ हम सोई।।१।।

मम उतपत्ति न सुरगण जाने,
नहिं महर्षिगण मोहिं पहचाने।
सबकर आदि–हेतु हम होऊँ,
सुरगण श्रेष्ठ महर्षिहि कोऊ।।२।।

जोइ, महेश, अज जानहि मोहीं,
पुनि अनादि जानहि जन वोही।
ज्ञानवान मानव महुँ सोई,
वह विमुक्त सब पापहिं होई।।३।।

---

१. छवविभूति = षडैश्वर्य (सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण धन, सम्पूर्ण ज्ञान, सौन्दर्य एवं सम्पूर्ण त्याग ये सदैव ऐश्वर्य होते हैं।) सम्पूर्ण शक्ति, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण धन, सम्पूर्ण ज्ञान, सौंदर्य एव सम्पूर्ण त्याग – ये छः विभूतियाँ (षडैश्वर्य होते हैं)।

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः
क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो
भयं चाभयमेव च।।४।।

अहिंसा समता तुष्टि-
स्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां
मत्त एव पृथग्विधाः।।५।।

महर्षयः सप्त पूर्वे
चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता
येषां लोक इमाः प्रजाः।।६।।

एतां विभूतिं योगं च
मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन
युज्यते नात्र संशयः।।७।।

अहं सर्वस्य प्रभवो
मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां
बुधा भावसमन्विताः।।८।।

संशय, मोह-रहित, बुधि ज्ञाना,
क्षमाभाव शुचि-सत्य विधाना।
इन्द्रिय-मन-निग्रह भयनाशा,
सुख दुःख जन्म मृत्यु के फाँसा।।४।।

यश, अपयश, तप, दान विचारा,
पुनि अहिंस समता-व्यवहारा।
सिरजित प्राणि-सहज-गुण एही,
होहिं सकल निरमित हम से ही।।५।।

सप्तमहर्षि, चारि सनकादी,
स्वायंभुव चौदह मनु आदी।
उद्भव सकल मोहिं मन होई,
तेहि सनतान प्रजा जग जोई।।६।।

मम विभूति, योगहि जोइ जानी,
अविचल[१] भगति सहित सोइ प्रानी।
अचल भक्ति मति युत जन सोई,
एहिमहुँ नहिं संशय कछु होई।।७।।

हमहिं लोक-कारण सबहीके,
अखिल लोक यह रचित हमी से।
यह जिय जानि भजत सुधि जोही,
शुचि मन भजत निरन्तर मोहीं।।८।।

---

१. अविचल = अडिग

मच्चित्ता मद्गतप्राणा
बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं
तुष्यन्ति च रमन्ति च।।९।।

तेषां सततयुक्तानां
भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं
येन मामुपयान्ति ते।।१०।।

तेषामेवानुकम्पार्थ-
महमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो
ज्ञानदीपेन भास्वता।।११।।

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम
पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्य-
मादिदेवमजं विभुम्।।१२।।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे
देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः
स्वयं चैव ब्रवीषि मे।।१३।।

दोहा– कर, मन–प्राण हमहिं–रत,
कथा सुनिहिं दिन–रात।
कहहिं,[१] गुनहिं,तोषहिं[२] सबहीं,
रमहिं[३], करहिं प्रिय बात।।९।।

एहि प्रकार जोइ युक्त[४] होई,
नित्य भजहिं करि प्रीति।
तत्त्व ज्ञान, सोइ कहहुँ तोही,
मोहिं पावे जेहि रीति।।१०।।

तेहि के हृदय विराजि के,
पार्थ! कृपा हित[५] जान।
ज्ञान–दीप से नाशऊँ,
तम समान – अज्ञान।।११।।

अर्जुन कहलें

चौपाई– तुम पर ब्रह्म पवित्रहि होऊ,
परम धाम उत्तम तुम सोऊ।
अज, अविनाशि, आदि–जग के ही,
दिव्य, नित्य स्वामी सबके ही।।१२।।

नारद, असित, देवलमुनि–व्यासा,
करहिं सकल तब सत्य प्रकाशा।
प्रभु–प्रत्यक्ष आपुहि कह मोहीं,
मोहिं सत्य समुझावहु सोही।।१३।।

---

१. कहहिं=आपस में मिलकर बातें करते हैं। २. तोषहिं =प्रसन्न होते हैं। ३. रमहिं =परमानन्द प्राप्त करते हैं। ४. युक्त =भक्ति में लीन, ५. कृपा हित =कृपा करने के लिए ही।

सर्वमेतदृतं मन्ये
यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं
विदुर्देवा न दानवाः।।१४।।

स्वयमेवात्मनात्मानं
वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश
देवदेव जगत्पते।।१५।।

वक्तुमर्हस्यशेषेण
दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोका-
निमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि।।१६।।

कथं विद्यामहं योगिं-
स्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु
चिन्त्योऽसि भगवन्मया।।१७।।

विस्तरेणात्मनो योगं
विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि
शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।।१८।।

केशव! जोहि कहहु मोहि पाहीं,
मानहुँ सत्य सकल हम ताही।
लीलामय तोहि-हे! भगवाना,
दानव; देव कोउ नहिं जाना।।१४।।

भूतेश्वर! जग देवन स्वामी,
पुरुषोत्तम! तुम आपहि जानी।
आपहि आप निजहि पहचानी,
नहिं तोहि जानि सकहिं जग-ज्ञानी।।१५।।

सकल विभूति व्याप्त भगवाना,
सकइ न कोइ कहहि जग माना।
आत्म-विभूति दिव्य जोइ-जोई,
प्रभु समुझाऊ सकलविधि सोई।।१६।।

चिन्तन सतत करत भगवानू,
केहि विधि तोहि हमहुँ पहचानूँ।
केहि-केहि भाव भजन के जोगू,
हम, कहु, नाथ! करउँ उदयोगू।।१७।।

केशव! कहहु पुनः विसतारा,
सुनि-सुनि मन नहिं भरहि हमारा।
सुधा-सिक्त[१] शुभ वचन तुम्हारे,
कहु विभूति निज योगहिं सारे।।१८।।

---

१. अमृत के समान, मधु-मय।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि
दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ
नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।।१९।।

अहमात्मा गुडाकेश
सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च
भूतानामन्त एव च।।२०।।

आदित्यानामहं विष्णु-
र्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि
नक्षत्राणामहं शशी।।२१।।

वेदानां सामवेदोऽस्मि
देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि
भूतानामस्मि चेतना।।२२।।

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि
वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि
मेरुः शिखरिणामहम्।।२३।।

श्रीभगवान जी कहनीं

दिव्य विभूति हमहिं निज जोही,
सुनु कुरु श्रेष्ठ! कहउँ कछु तोही।
अन्तहीन सब मोर विताना[१],
कुछ प्रधान कहुँ, कह भगवाना।।१९।।

अन्तरमन सब जीवहि के ही,
करउँ वास हम अर्जुन तेही।
सबकर आदि-मध्य अवसाना[२],
होउँ हमहिं अस कह भगवाना।।२०।।

दोहा-

अदिति पुत्र महुँ विष्णु हम,
ज्योतिर्माहिं दिनेश।
हम मरीचि मारुत महूँ,
तारा - महुँ - राकेश।।२१।।

साम वेद सब वेद महूँ
वासव देवन माहिं।
इन्द्रियमहुँ मन चेतना,
जीव सकल जग जाहिं।।२२।।

रुद्र एकादश शिव सदा,
यक्षन बीच कुबेर।
वसुमहुँ पावक भाँति हम,
गिरि महुँ श्रेष्ठ सुमेर।।२३।।

१. वितान = विस्तार, शौर्य, क्षमता। २. अवसान =अन्त।

पुरोधसां च मुख्यं मां
विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः
सरसामस्मि सागरः।।२४।।

महर्षीणां भृगुरहं
गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि
स्थावराणां हिमालयः।।२५।।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां
देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः
सिद्धानां कपिलो मुनिः।।२६।।

उच्चैःश्रवसमश्वानां
विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां
नराणां च नराधिपम्।।२७।।

आयुधानामहं वज्रं
धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः
सर्पाणामस्मि वासुकिः।।२८।।

चौपाई– पौरोहित महुँ गुरु हम होऊँ,
हम असकन्द[१] सैन्यपति[२] सोऊ।
सर महुँ सागर रूप हमारा,
कहहुँ तुमहिं निज तन विसतारा।।२४।।

महाऋषी, भृगु रूप हमारा,
एकाक्षर शुभ हम ओंकारा।
हम जप–यज्ञ सकल मखमाहीं,
हिमगिरि हमहिं सकल अग[३] जाहीं।।२५।।

पीपल वृक्ष सकल तरु माहीं,
नारद मुनि हम सब ऋषि जाहीं[४]।
चित्ररथी[५] गन्धर्वन मेही,
हम मुनि कपिल सिद्ध जन–जेहीं।।२६।।

उच्चैः श्रवा, अश्वमहुँ होऊँ,
सुधा कलश–कर प्रकटउ जोऊ।
गज महुँ ऐरावत मोहिं मानू
नरमहुँ श्रेष्ठ नृपति मोहिं जानू।।२७।।

कामधेनु हम–गोपशु जाती,
आयुध महुँ हम वज्रहि भाँती।
प्रजन[६] कर्म महुँ रति पति होऊँ,
नागमध्य[७] हम वासुकि[८] सोऊ।।२८।।

---

१. असकन्द=स्कन्द २. सैन्यपति =सेनापतियों में। ३. अग=पर्वत, ४. जहाँ तक, ५. लक्ष्मण का पुत्र। ६. सन्तान उत्पन्न करना। ७. नागमध्य= सर्पों में, ८. वासुकि = सर्पराज।

अनन्तश्चास्मि नागानां
वरुणो यादसामहम्।
पितॄणामर्यमा चास्मि
यमः संयमतामहम्।।२९।।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां
कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं
वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।३०।।

पवनः पवतामस्मि
रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि
स्रोतसामस्मि जाह्नवी।।३१।।

सर्गाणामादिरन्तश्च
मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां
वादः प्रवदतामहम्।।३२।।

अक्षराणामकारोऽस्मि
द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो
धाताहं विश्वतोमुखः।।३३।।

शेष नाग हम नागहि माँही,
वरुणदेव जलचर सब काहीं।
अर्यम-पितर, पितर महुँ होउँ,
शासक महुँ यम क्रूरहि सोऊ।।२९।।

दोहा– दैत्य बीच प्रहलाद हम,
दण्ड – विधायक काल।
वैनतेय[१] सब खग महूँ,
मृग–महुँ बाघ कराल।।३०।।

पवकारक[२] महुँ पवन हम,
शस्त्र धारि महुँ राम।
मगर, मछलियों में हमी[३],
नदिमहुँ गंग समान।।३१।।

सकल सर्ग के आदि अरू
अन्त मध्य मोहिं मानु।
विद्यामहुँ अध्यात्म हम,
वाद, तर्क महुँ जानु।।३२।।

चौपाई–

अक्षर महुँ ओंकार समाना,
सामासिक महुँ द्वन्द्वहि नामा।
महाकाल कालहु के होऊँ,
मुख–विराट्[४] पोषक हम सोऊ।।३३।।

---

१. वैनतेय=गरूड़ पक्षी, २. शुद्ध करने वाला। ३. हमी=हमहीं, मैं, ४. विश्वरूप विराट मुख।

मृत्युः सर्वहरश्चाह-
मुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां
स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।३४।।

बृहत्साम तथा साम्नां
गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽह-
मृतूनां कुसुमाकरः।।३५।।

द्यूतं छलयतामस्मि
तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि
सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।।३६।।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि
पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः
कवीनामुशना कविः।।३७।।

दण्डो दमयतामस्मि
नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां
ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।३८।।

सबहि विनाशक मृत्युहि मानू,
जग उद्भव[१] महुँ मूलहि जानू।
मेधा, श्री, धृति[२], क्षमा[३] खजाना,
कीर्ति-स्मृति-वच् नारि समाना।।३४।।

वृहत् साम श्रुति महुँ हमहीं तो,
गायत्री सम छन्द-हमी तो।
माह[४] माहि अगहन हम होऊँ,
ऋतु महुँ सरस वसन्तहि सोऊ।।३५।।

जूआ सदा छलीजन में हीं,
तेज हमहिं सब तेजस के हीं।
विजयी महुँ मैं विजय कहाऊँ,
निश्चय, सत्व-पुरुष महुँ भाऊँ।।३६।।

वृष्णि-वंश महुँ हम वसुदेऊ,
पाण्डव बीच धनञ्जय सोऊ।
मुनि-महुँ व्यास, उशन[५] कविमाहीं,
एहि विधि, प्रभु कह पारथ पाहीं।।३७।।

हमहिं दण्ड सब शासक के ही
हम सुनीति विजयी जन में ही।
सबहि गुह्य महुँ मौन सुभाऊँ,
ज्ञानी-जन-महुँ ज्ञान कहाऊँ।।३८।।

---

१. उत्पत्ति, २. धृति=धारणा, दृढ़ता, ३. क्षमा= धीरता, ४. माहमाँहि=महीनों में, उशन=उशना नामक एक प्राचीन विद्वान कवि।

यच्चापि सर्वभूतानां
बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्या-
न्मया भूतं चराचरम्।।३९।।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां
विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो
विभूतेर्विस्तरो मया।।४०।।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं
श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं
मम तेजोंऽशसम्भवम्।।४१।।

अथवा बहुनैतेन
किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न-
मेकांशेन स्थितो जगत्।।४२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः।। १०।।

हमहिं बीज सब जीवहि के ही,
अर्जुन! तथ्य बतावउँ तेही।
नहिं चर-अचर-भूत जग माहीं,
हमसे रहित सकइ रह पाहीं।।३९।।

दिव्यविभूति अन्तनहिं जेही,
कहउँ, तोहि संक्षेपहि से ही।
एहि विधि जानु परन्तप! मोहीं,
सत्य सत्य समुझावहुँ तोहीं।।४०।।

दोहा–

जोइ जगवस्तु विभूति पुनि,
कान्ति, रमा सनमान।
प्रकट सबहिं मम अंश से
यह रहस्य तुम जान।।४१।।

या, अर्जुन बहु बात से,
कोइ प्रयोजन नाहिं।
धारउँ सब ब्रह्माण्ड हम,
एक अंश निज पाहिं।।४२।।

निचोड़– चौपाई–

तेज पाइ रविकेशव से ही, सकल शक्ति सीमित हरि में ही।
जगपालहिं निज अंशहि तेही, कृष्ण पूज्य एहि कारण से ही।।

सम्पन्नोऽयम् दशमोऽध्यायः

●

।।अथ एकादशोऽध्यायः।।

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं
गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन
मोहोऽयं विगतो मम।।१।।

भवाप्ययौ हि भूतानां
श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष
माहात्म्यमपि चाव्ययम्।।२।।

एवमेतद्यथात्थ त्व-
मात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूप-
मैश्वरं पुरुषोत्तम।।३।।

।। एकादश अध्याय ।।

सन्दर्भ–

दोहा– सब कारण के कारण, कृष्ण महा प्रभु होय।
उद्‌गम जोई ब्रह्माण्ड के, महाविष्णु प्रभु सोय।।
सकल जीव हृदि राजते, परम ब्रह्म भगवान।
अति विशाल प्रभु रूप का, एहि अध्याय बखान।।

अरजुन कहलें

दोहा– अध्यात्मिक उपदेश इहे,
परम गुप्त जोइ आप।
कहेउ हमहिं पर करि कृपा,
विगत मोर भ्रम ताप।।१।।

चौपाई–

भव[१], लय, जीव–जगत सबके ही,
कहेउ हमहिं विसतारहि से ही।
कमल नयन! महिमा तव भारी,
समुझहुँ हम निज मति अनुसारी।।२।।

जस मोहिं कहेउ आप वोहि भाँती,
पर मन मोंहि कामना जागी।
पुरुषोत्तम! तव दिव्य अनूपा,
देखन चहउँ ईश वह रूपा।।३।।

---

१. भव = उत्पत्ति,

मन्यसे यदि तच्छक्यं
मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं
दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि
शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि
नानावर्णाकृतीनि च॥५॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रा-
नश्विनौ मरुतस्तथा॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणि
पश्याश्चर्याणि भारत॥६॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं
पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश
यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

न तु मां शक्यसे
द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः
पश्य मे योगमैश्वरम्॥८॥

यदि मानहु हम सकहिं विलोकी,
तव अनुपम वह रूप त्रिलोकी
विश्वरूप दिखलावहु सोई,
योगेश्वर! तुम धारहु जोई।।४।।

श्री भगवान जी कहनीं

अर्जुन! देखहु विविध वितानां[१],
दिव्य रूप मम, कह भगवाना।
शत सहस्त्र तनु देखु हमारा,
रंग, रूप, सब विविध प्रकारा।।५।।

छन्द छप्पय–

देखहु धनञ्जय! रुद्र वसु–अश्विनि मरुत आदित्य वो।
अचरज सहित सब रूप अस, देखउन पहिले जोइ कबो।
एक ठाँव ही, एहि देह में, ब्रह्माण्ड सगरे देखहू।
अवरी जो देखन चाहुऊ, सब कुछ इसी तन देखहू।।६।।

चर–अचर अचरज सहित सब,
तोहिके देखावउँ हम अबे।
एहि भाँति ही गुडकेश[२] से
केशव कहन लागे तबे।।७।।

चौपाई–

नहिं तुम सकहि विलोकहि मोहीं,
इन अँखियन तुम देखहु जोहीं।
दिव्य–दृष्टि एहिकारण–तोही–
देउँ, देखु मम वैभव[१] वोही।।८।।

---

१. विताना = विस्तार। २. गुडकेश = अर्जुन।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राज-
न्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय
परमं रूपमैश्वरम्।।९।।

अनेकवक्त्रनयन-
मनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं
दिव्यानेकोद्यतायुधम् ।।१०।।

दिव्यमाल्याम्बरधरं
दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देव-
मनन्तं विश्वतोमुखम्।।११।।

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य
भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्या-
द्भासस्तस्य महात्मनः।।१२।।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं
प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य
शरीरे पाण्डवस्तदा।।१३।।

संजय कहलें

दोहा– राजन! अस कहि पार्थ सेहीं
योगेश्वर[२] – भगवान।
दिखलावत अति दिव्य निज,
ऐश्वर[३] रूप महान्।।९।।

चौपाई–
कई मुख नेत्र विचित्र स्वरूपा,
भूषण, मणि कर शस्त्र-अनूपा।
दिव्य विभूषित तन हरि केही,
उपमा कहि न सकहिं कवि तेही।।१०।।

माला दिव्य वस्त्र बहुधारे,
दिव्य गंध लेपित तन सारे।
अचरज सहित, रहित सब सीमा,
सबदिशि मुखहि महातन–भीमा।।११।।

छप्पय छन्द–
सहस रवि मिलि उगहिं नभ महुँ,
जस तुलहिं ते कुछ–कुछ सभे।
उस परम–नर जग–रूप का
आलोक[४] तहँ चमकहिं तबे।।१२।।

उस विश्वरूप विशाल हरितन, लोक सब तेहि साथ में।
एकत्र ही अवलोकि सब, ब्रह्माण्ड के–कई भाग में।
देखहि धनञ्जय रूप वह, तहँ बैठिके नृप साथ ही,
नहिं देखि सकि कोउ अन्य जन, वह दृष्टि नहिं तेहि पास थी।।१३।।

१. वैभव=ईश्वरीय योगशक्ति, २. योगेश, ३. ऐश्वर रूप= विश्वरूप, ४. आलोक =प्रकाश।

ततः स विस्मयाविष्टो
हृष्टरोमा धनञ्जयः।
प्रणम्य शिरसा देवं
कृताञ्जलिरभाषत ।।१४।।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्चसर्वानुरगांश्च दिव्यान्।।१५।।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।।१६।।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ।।१७।।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।१८।।

तब चकित–चित,अचरज सहित,अतिहरष के अतिरेक[१] से
सब रोम पुलकित पार्थ तन इस रूप में– प्रभु देखि के।
श्रद्धा तथा अति भगति वस, कर जोड़ि करि होई खड़े।
अर्जुन तबहिं नत भाव से, भगवान पहिं बोलन लगे।।१४।।

अर्जुन कहलें

छन्द छप्पय–

भगवान! तोरिहि तन सकल सुर–संघ देखउँ संग में।
पुनि देव सब जग जीव सह, देखउँ तुम्हारे अंग में।
प्रिय पदम पर आसीन अज, शिव, दिव्य पन्नग राजहीं।
तप के धनी ऋषि मुनि यहीं, सब संग–संग विराजहीं।।१५।।

विश्वेश! हम बहु–बाहुलखि[२] कई उदर आनन देखिहौं।
कई नेत्र, कर, सरवत्र[३] खिल[४] कुछ अन्तनाहिं निरेखि[५] हौं।।
नहिं आदि कोई मध्य पुनि, अवसान कुछ नहिं जानिहौं।
जहँ–जहँ विलोकउँ पाउँ सब, ब्रह्माण्ड सम तोहि मानिहौं।।१६।।

मञ्जुल मुकुट, गद[६], चक्र शुभ, आलोक सब दिशि देखऊँ।
तन–तेज–निधि–सब दिक्–दिशा, देदीप्यमान निरेखऊँ।।
दुर्दृष्ट, अपरमपार प्रभु! होउ दीप्त वैश्वानर[७] तुही।
अथवा चमकते सूर्य सम निज चमक फैलाते तुही।।१७।।

तुम ज्ञेय, अक्षर ब्रह्म अरु, शास्वत शुभद अवतार हो।
जगदीश! सब ब्रह्माण्ड के, आपहि सुदृढ़ आधार हो।।
अव्यय, सनातन धर्म के, पालक तुमहिं भगवान हो।
हमरे त मत बाटे इहे, तुहि पूज्य पुरुष महान हो।।१८।।

---

१. अतिरेक = आधिक्य, आवश्यकता से अधिक। २. देखकर ३. सर्वत्र ४. खिला हुआ
५. देखना, अवलोकन करना, ६. गद = गदा, ७. वैश्वानर =अग्नि। ८. शुचि =पवित्र (शुभ)

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।।१९।।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।।२०।।

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।।२१।।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।।२२।।

रुपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्।।२३।।

अथवा छन्द छप्पय-

नहिं आदि अन्त न मध्य कछु तव बल अनन्त महान बा।
निज तेज से सब जग तपत, तव तन महा विकराल बा।
प्रज्ज्वलित अग्नि प्रचण्ड दिशि दश, भव्य आनन राउरे।
रवि,शशि-नयन,मुख अनल लखि जग तपत भुज बल राउरे।।१९।

भू- स्वर्ग-मध्य, समग्र-नभ, मुख व्याप्त देखउँ आपके।
तेहि काल-सम-विकराल लखि,जग चर-अचर सब काँपते।
तोहिके अकेले देखि प्रभु! द्यावा[१]-धारित्री[२] बीच में।
नरश्रेष्ठ! जग-भयभीत अब, तिहुँ लोक के एहिं चीख से।।२०।।

सोई सकल सुरसंघ मिलि, प्रभु के शरण जावहिं सबे।
भयभीत कछु कर जोड़कर, वन्दन करहिं प्रभु आपके।।
सब सिद्ध संग महर्षिगण, स्वस्तीति' कहते आवहीं।
श्रुति-छन्द बंधित पाठ पढ़ 'कल्याण हो' यह गावहीं।।२१।।

रुद्र ग्यारह, भानु बारह, आठ-वसु, सब साध्य वो।
विशदेव, अश्विनि, औ मरुत, सब पितर पूज्याराध्य वो।।
गन्धर्व, राक्षस यक्ष बहु, सब सिद्ध मिलि देखहिं इहे।
विकराल लखि प्रभु गात के, यह बात अर्जुन जी कहे।।२२।।

बहु नेत्र आनन बाहु हे महबाहु! रूप अपारं बा,
उरु, पाँव, पेट, विराट् तनु, पुनि दाँत के विसतार बा।।
विकराल, काल समान, वपु,[३] प्रभु! आपके देखऊँ इहाँ।
अति चकित चित,भयभीत मन, अब हरि! हमारे होइ रहा।।२३।।

---

१. द्यावा = स्वर्ग, २. धरित्री = धरती, पृथ्वी। ३. वपु = शरीर।

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।।२४।।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास।।२५।।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।।२६।।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः।।२७।।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा-
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।।२८।।

हे विष्णु! नभचुम्बित विविध बहुरंग अस देदीप्य जो।
विवृत[१] सु-आनन नयन बड़ चमके यथा आदित्य हो।
आपके अस देख मन भयभीत विचलित होइ रहा।
अन्तःकरण तो भी हमारो, शान्ति, धीरज खोइ रहा।।२४।।

विकराल दन्त विशाल आनन प्रलय पावक भाँति ही।
नहिं मोद, ऐसा देख, मुख, विस्मृत दिशा सगरे अभी।।
देवेश! हे जगनाथ! प्रभु, अब मुदित मुख अपना करू।
यह रूप अपना सौम्य करु, भय-भी हमारो तू हरू।।२५।।

धृतराष्ट्र के सब पुत्र, पुनि नृपसंघ सब मुख आवहीं।
भीष्म द्रोणाचार्य सह कौन्तेय! भी मुख-जावहीं।
साथ ही मुख में सभी योद्धा-तुम्हारेउ आ रहे।
एहि भाँति ही भयभीत मन, अर्जुन उहँ घबड़ा रहे।।२६।।

विकराल मुख महुँ दाँत, जस महकाल ही बा सामने।
अति तीव्र गति धावहिं सबहिं जावहिं मुखहिं महुँ आपके।
कुछ दाँत माहीं दिखि रहे, कुछ पिस रहे सिर साथ में।
अँटके हुए मुख-दन्त महुँ, कुछ वीर आनन आपही।।२७।।

जेहि भाँति सरित-प्रवाह नित अति तीव्र गति धारण किये,
प्रकृति-वश जस सिन्धु महुँ, धावत निरन्तर मिलि रहे।
उस भाँति ही नरलोक के, सब वीर तोहि मुख आवहीं।
तव ज्वलित-आनन महुँ सबहिं, आपहिं समाते जावहीं।।२८।।

---

१. विवृत = विस्तीर्ण फैला हुआ।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा-
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।।२९।।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो।।३०।।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।।३१।।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो-
लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।।३२।।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।३३।।

जिमि ज्वलित ज्वाला महुँ शलभ [१] सब जाहिं आपहि आपसे।
अति वेग से निज नाश हित सब मृत्यु-मुख महुँ जा धँसे।
वोहि भाँति हि सब लोग मिलि निज-नाश हित ही जावहीं।
हम विलोकउँ लोक सब, आनन तुमहिं झट आवहीं।।२९।।

निज ज्वलित आनन ग्रसत जग, अरु चाटते पुनि पुनि सभी।
हे विष्णु! तीव्र-प्रकाश तव-तन-तेज तापित-भव [२] अभी।
देवेश! लखि तव दशन सह ई बदन अति विकराल बा।
जस दहत यह त्रैलोक्य तप, भयभीत मन बेहाल बा।।३०।।

विकराल कालहि रूप महुँ, तुम कौन हो समुझाइये।
हे दैव देव! नमामि सुरवर! अब मुदित मन हो जाइये।
हे आदि नर हम आपको, कुछ जानना ही चाहते।
कुछ-भी नहीं हम आपकी इस दिव्यता को जानते।।३१।।

श्री भगवान जी कहनीं

मोहिं विकट काल कराल तिहुँपुर उग्र नाशक जानिये।
अवतरित हूँ इस जगत के सब नाश-हित यह मानिये।
तू युद्ध कर या ना भले, प्रतिपक्ष के भट तो सबे।
तेरे सिवा दोउ पक्ष के योद्धा मरेंगे ही अबे।।३२।।

इस हेतु उठ, यश प्राप्त कर, संग्राम कर अरि जीत लो।
धन-धान्य-सम्पन्ना धरा के भोग से मन प्रीति हो।
पूर्व ही सब हत हुए, ये वीर मुझसे जान लो।
अतएव अर्जुन! निमित बन, तुम यहाँ केवल लड़ो।।३३।।

१. शलभ = फतिंगा। २. भव = संसार। ३. सव्य साची = अर्जुन।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा-
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान्।।३४।।

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं-
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य।।३५।।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः।।३६।।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्।।३७।।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।।३८।।

भट-भीम, जयरथ, द्रोण गुरु सुत-पुत्र[१] योद्धा भी सभी।
हे वीरवर! येहि वीर सब मारे गये हैं-पूर्व ही।।
अब मार इन मृत वीर को, हे वीर! चिन्ता करु नहीं।
संग्राम कर अरिनाश कर, रण जीत लेगा तूँ अभी।।३४।।

संजय कहलें

चौपाई-
केशव वचन सुनत एहि भाँती,
तन कम्पित मन भीति समाती।
मुकुटधारि अर्जुन कर जोड़े-
गद्गद् वचन, नमनकर बोले।।३५।।

अरजुन कहलें

छन्द छप्पय-
अर्जुन कहेउ प्रभु, उचित यह, जस, नाम-गुण जग गावहीं।
होइहिं सबहिं अति मुदित-मन, भयभीत निशिचर भागहीं।
सब सिद्ध-गण-समुदाय मिलि, गावहिं सुयशगुण आपके।
रणभूमि महुँ गुञ्जन भइल प्रभु-पार्थ के सम्बाद के।।३६।।

तुम ब्रह्म के भी हेतु हरि! पुनि श्रेष्ठ तेहि से अधिक हीं।
तब, पूज्यवर वर! राउरो, होइ वन्दना कइसे नहीं।
नहिं अन्त हे देवेश! तुम संसार के आधार हो।
तुम सत् असत से होउ परे, अक्षय, सदा ही आप हो।।३७।।

तू ही पुरातन पुरुष हो, संसार का आश्रय बने।
देवेश! उत्तम धाम तूँ, पुनि वेद्य[२] औ वेत्ता[३] बने।
हो ज्ञेय, ज्ञाता[४] लोक के, तू ही परम भगवान हो।
संसार में यों व्याप्त हो, चर-अचर के तू प्रान हो।।३८।।

---

१. सुतपुत्र = सूतपुत्र, कर्ण। २. वेद्य = जानने योग्य, ३. वेत्ता= जानकार, जानने वाला, ४. ज्ञाता = जानने वाला।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।।३९।।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।।४०।।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।।४१।।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।४२।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।।४३।।

आपहि वरुण,शशि, अनिल,औ आपही अनल विकराल हो।
तुहि विधि–प्रजापति के जनक, पुनि–पुनि तुमहिं परनाम हो।
परनाम होउ देवेश! तव पद–कोटि कोटिहि बार हो।
पुनि–पुनि प्रणाम! प्रणाम! प्रभुपद नमन बारम्बार हो।।३९।।

तव पृष्ठतः[1] पुरतः[2] प्रभो! सब ओर से परनाम[3] हो।
होउ सर्वतः परनाम ही, कइ कोटिकोटिहि बार हो।
हे वीर–शूर, अनन्त! अरु आपहि अतुल बलवान हो।
सब रूप में संसार में, तू व्याप्त, प्रभु, भगवान हो।।४०।।

दोहा– बिन जाने समझे प्रभो!
महिमा तोर अपार।
हे केशव! यादव! सखे!
कहेउ प्रेम–हठ–प्यार।।४१।।

चौपाई– प्रतिदिन हँसहिं हँसावन हेतू,
भोजन शयन, विहारन में तूँ।
रहेउ साथ अपमानउँ तोहीं,
अच्युत! क्षमहु दोष सब मोहीं।।४२।।

तुम चर–अचर जनक जग सोई,
मोर महान गुरुहि तुम सोई।
अतुलशक्ति तव त्रिभुवन माहीं,
होइ न अधिक कोई जग जाहीं।।४३।।

१. पृष्ठतः= पीछे से। २. पुरतः = आगे से, सामने से। ३. परनाम = प्रणाम।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।।४४।।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास।।४५।।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।।४६।।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।।४७।।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।।४८।।

एहि कारण निज तन, पद-तोही,
वन्द्य ईश! अर्पित कर वोही।
प्रेमी, तात, मित्र जेहि भाँती,
क्षमहिं, प्रिया, सुत, मित्र संघाती।।४४।।

प्रभु! अवलोकि सुतनु यह तोरा,
नहिं देखहि दृग पूर्वहिं[१] मोरा।
मुदित-मोर-मन व्याकुल होई,
विष्णु-स्वरूप दिखावहु सोई।।४५।।

मुकुट-धारि, गद चक्रहि हाथा,
विश्वरूप दरशावहु नाथा।
प्रकट होउ भुज चारिहि धारी,
सहसबाहु! मम भाव विचारी।।४६।।

श्रीभगवान जी कहनी

होइ प्रसन्न, अर्जुन! तुम पाहीं,
योग-शक्ति बल-रूप दिखाहीं।
विश्व रूप, आद्यन्त बिहीना,
जेहि देखइ जन अपर कभी ना।।४७।।

विश्वरूप! मैं, नहिं नर लोका,
दृश्यमान श्रुति, यज्ञ विशेषा।
दान, पठन-तप उग्र प्रभाऊ,
तोहि तजि आन दरश नहिं पाऊ।।४८।।

---

१. पूर्वहिं = पहिले, पूर्व में।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।।४९।।

सञ्जय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।।५०।।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं
तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः
सचेताः प्रकृतिं गतः।।५१।।

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं
दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य
नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।।५२।।

नाहं वेदैर्न तपसा
न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं
दृष्टवानसि मां यथा।।५३।।

रूप कराल देखि मम सोऊ,
तुम अस मूढ़ अधीन न होऊ।
तुम भय-हीन प्रीति मन धरहू,
रूप चतुर्भुज दरशन करहू।।४९।।

संजय कहलें

चौपाई- अस कहि वासुदेव निजरूपा,
दिखलावहिं भुज चारि अनूपा।
होइ पुनि सौम्य-रूप भगवाना,
देइ धीरज अरजुन बलवाना।।५०।।

अरजुन कहलें

नर-तन सौम्य, देखि प्रभु तोही,
दृढ़ मति चित्त भयउ अब मोहीं।
पहिलेउ भाँति भयउ हम अबहीं,
प्राकृत रूप पाइ निज सबहीं।।५१।।

श्री भगवान जी कहनीं

दुरलभ रूप पार्थ! यह सोई,
देखिहिं चारि भुजा धरि जोई।
तरसहिं दरशन हित सुर सारे,
देखन हित सब रूप हमारे।।५२।।

जोइ, तुम रूप विलोकहु मोरे,
नहिं तप-दान-यज्ञ श्रुति तोरे।
एहि विधि, प्रभु-हरि-रूप निरेखी।
भइ अर्जुन मन आस विशेषी।।५३।।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य
अहमेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन
प्रवेष्टुं च परन्तप।।५४।।

मत्कर्मकृन्मत्परमो
मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु
यः स मामेति पाण्डव।।५५।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

●

दोहा–

अर्जुन! होइ दृढ़ भक्ति जभी,
तब सम्भव यह होय।
तत्त्व–ज्ञान दरशन सब,
होय परंत्तप! सोय।।५४।।

करहिं करम मोंहि लागि सभे,
सतत हमहिं रत भक्त।
प्राप्त करहिं नर मोहिं वो,
होइ अरि–हीन विरक्त।।५५।।

निचोड़–

सर्वोपरि हरि कृष्ण हैं, यही परम है सार
कालरूप भक्षण करें, क्षण भङ्गुर संसार।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः।।११।।

●

।।अथ द्वादशोऽध्यायः ।।

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये
भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं
तेषां के योगवित्तमाः।।१।।

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां
नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेता-
स्ते मे युक्ततमा मताः।।२।।

ये त्वक्षरमनिर्देश्य-
मव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च
कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।३।।

।। द्वादश अध्याय ।।

सन्दर्भ–

निर्विशेष, सगुणी दोऊ, भगत जगत में होय।
ब्रह्म ध्यान पहिला करें, पूजन भक्ती दोय।।

अरजुन कहलें

चौपाई–

कोई भगत धरि ध्यान तुम्हारा,
निराकार कोउ अछर[1] प्रकारा।
तेहि यति महुँ उत्तम यति केही,
कवन योगविद् वरनउ तेही।।१।।

श्रीभगवान जी कहनीं

हमहि चित्त सुदृढ़ जे करहीं,
श्रद्धा सहित सगुण मोहिं भजहीं।
यति महुँ अति उत्तम यति सोही,
समुझावहिं हरि पारथ को ही।।२।।

अक्षर, अगुण[2] अनिश्चित जानी,
मोहिं व्यापक सरवत्रहि मानी।
परम सत्व निरकार स्वरूपा,
कूठस्थहि[3] अविचलहि अनूपा।।३।।

---

१. अछर = अक्षर=अविनाशी, २. अगुण=अव्यय ३. कूठस्थ=अपरिवर्तित।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं
सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव
सर्वभूतहिते रताः।।४।।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषा–
मव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं
देहवद्भिरवाप्यते ।।५।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि
मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन
मां ध्यायन्त उपासते।।६।।

तेषामहं समुद्धर्ता
मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ
मय्यावेशितचेतसाम् ।।७।।

मय्येव मन आधत्स्व
मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव
अत ऊर्ध्वं न संशयः।।८।।

समदर्शी इन्द्रिय वश जाके,
प्राणि-मात्र-हितचिन्तक ताके।
सोइ योगी साधक मोहिं पावें,
एहि विधि कृष्ण पार्थ समुझावें।।४।।

नित आसक्त अगुण महुँ जोई,
निश्चित तेहि कष्ट अति होई।
क्लेश, विशेष भोगि यति वोही,
पावत पुरुष सदागति सोही।।५।।

दोहा-
मोहिं परायण होइ यती,
अरपित कर सब काम।
हमहिं सगुण परमेश के,
भजन करहिं अविराम[१]।।६।।

चौपाई-
हमहिं निरन्तर रत यति जोही,
करउँ उधार[२] शीघ्र हम वोही।
जनम-मरन जग-सागर से ही,
करिहौं मुक्त अचिर[३] हम तेही।।७।।

हमहिं करहिं मन-बुद्धि विवेकू,
करहि निवास हमहि तन में तू।
नहिं संशय कछु करु एहि पाहीं,
एहि प्रकार प्रभु पार्थ बताहीं।।८।।

१. अविराम = निरन्तर, २. उधार = उद्धार, ३. अचिर = शीघ्र

अथ चित्तं समाधातुं
न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो
मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।९।।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि
मत्कर्मपरमो भव।।
मदर्थमपि कर्माणि
कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ।।१०।।

अथैतदप्यशक्तोऽसि
कर्तुं मद्योगमाश्रितः।।
सर्वकर्मफलत्यागं
ततः कुरु यतात्मवान्।।११।।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासा-
ज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्याग-
स्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।।१२।।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां
मैत्रः करुण एव च।।
निर्ममो निरहङ्कारः
समदुःखसुखः क्षमी।।१३।।

सकहु न कर मन दृढ़ यदि मोहीं,
करूँ अभ्यास योग तुम-सोही।
करहु यतन मोहिं पावन हेतू,
हमहिं करहुँ दृढ़ पारथ! चेतू।।९।।

नहिं करि सक, यदि एहि प्रकारा,
हमहिं हेतु करु करतब सारा।
होहिं सिद्ध सब करम तुमारो,
अर्जुन! होउ यदि हेतु हमारो।।१०।।

यदि एहि विधि करि सकइ न योगा,
हमहिं आस कर, कर उदयोगा[१]।
संयमचित्त, करम-फल छोड़ी,
सकल भोग सुख से मुँह मोड़ी।।११।।

अभ्यासहि-पथ उत्तम ज्ञाना,
ज्ञानहु से उत्तम गुरु ध्याना।
ब्रह्म न कारण, कार्य न होई,
मोर अधीन ब्रह्म नित सोई।।१२।।

तज, मन-द्वेष जीव-हित होऊ,
स्वारथ तजि करनी कर सोऊ।
सुख-दुख-भय-चिन्ता-महुँ जोही,
क्षमाशील नर अति प्रिय मोहीं।।१३।।

१. उदयोगा = उद्योग, यत्न।

सन्तुष्टः सततं योगी
यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धि-
र्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१४।।

यस्मान्नोद्विजते लोको
लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगै-
र्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।१५।।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष
उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी
यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।१६।।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि
न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी
भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।१७।।

समः शत्रौ च मित्रे च
तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु
समः सङ्गविवर्जितः।।१८।।

सतत भगति-रत, संयम सेवी,
सुदृढ़ विचार हमहिं प्रति वेही।
मोंहि समर्पित मन-बुद्धि पाई,
अर्जुन! सोइ नर मोहिं सुहाई।।१४।।

नहिं कछु क्लेश देइ, नहिं लेई,
हरष-विषाद क्रोध-बिन जेई।
सोइ भगत मोहिं अति प्रिय होई,
प्रभु, पारथ समुझावहिं सोई।।१५।।

दोहा-

काम-रहित अन्तर-बहिर
शुचि, पटु शोक न कोइ।
पक्षपात, फल कर्म ना,
अतिशय प्रिय मोहिं सोइ।।१६।।

चौपाई-

हरष करहिं नहिं, करहिं न द्वेषा,
नहिं कछु शोक न काम विशेषा।
शुभ अरु अशुभ करम सब त्यागी,
सोइ भगत नर, प्रिय मोहिं लागी।।१७।।

अरि-मित होइ सदा सम भावा,
मान, अमान, समान सुहावा।
शीत-उष्ण, सुख-दुख सम जोई
पुनि आसक्ति रहित नर होई।।१८।।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी
सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमति-
र्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।१९।।

ये तु धर्म्यामृतमिदं
यथोक्तं पर्युपासते।।
श्रद्दधाना मत्परमा
भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।२०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

निन्दा-स्तुति समझहिं सम-रूपा,
जीवन-वहन करहिं रहि चूपा।
ममता, भवन-रहित नर जोही,
दृढ़ मति, भगत-पुरुष प्रिय मोही।।१९।।

भक्ति-अमर-पथ, जोइ अनुसरहीं,
श्रद्धा-सहित भगति नर करहीं।
सोइ भगत मोहिं अति प्रिय लागे।
भगति-हमार जेहि उर जागे।।२०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

विमर्श–

नहिं कोइ काम न लोभ हिय, भक्त सरलचित जोय।
जीवन-वहन धरम तेही, कृष्ण कृपा सब होय।।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय
क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः
क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।१।।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि
सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं
यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।२।।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च
यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च
तत्समासेन मे शृणु।।३।।

।। त्रयोदश अध्याय ।।

सन्दर्भ–

पुरुष, प्रकृति अरु चेतना, वरनन एहि अध्याय।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ प्रभू, ज्ञान ज्ञेय बतलाँय।।

श्रीभगवानजी कहनीं

दोहा–

अर्जुन! ई तन क्षेत्र ह,
जानहि सोइ क्षेत्रज्ञ।
एहि प्रकार जोइ जानहीं,
सोइ ज्ञानी तत्वज्ञ।।१।।

चौपाई–

क्षेत्रन महुँ क्षेत्रज्ञहि जानू,
मोहिं महान पारथ! तुम मानू।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञहिं ज्ञाना,
ज्ञान उहे अस मत हम माना।।२।।

जोइ वह क्षेत्र, जाहि विधि होई,
जेहि विकार संयुत होइ सोई।
कारण जोइ, प्रभावहि जोही,
अति लघु रूप सुनहु तुम वोही।।३।।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं
छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव
हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ।।४।।

महाभूतान्यहङ्कारो
बुद्धिरव्यक्तमेव च।।
इन्द्रियाणि दशैकं च
पञ्च चेन्द्रियगोचराः।।५।।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं
सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन
सविकारमुदाहृतम् ।।६।।

अमानित्वमदम्भित्व-
महिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं
स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।७।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्य-
मनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधि-
दुःखदोषानुदर्शनम् ।।८।।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञहि ज्ञाना,
विविध भाँति बहु ऋषिहि बखाना।
ब्रह्म-सूत्र पुनि छन्द अनेका,
गावहिं निशचय कर सविवेका।४।।

धी[१], मन अवर बाण[२] महभूता[३],
प्रकृति अहंकृति भाव स्वरूपा।
पाँच विषय मिलि इन्द्रिय केही,
पुनि इन्द्रिगण साथ किए ही।।५।।

इच्छा, सुख, दुख, धृति अरु द्वेषा,
चेतन और संघात[४] विशेषा।
कर्म-क्षेत्र संक्षेपहि सबहीं,
येहि 'विकार यती-सुधि कहहीं।।६।।

अहंभाव, दम्भादि अभावा,
शौच, सरल नहिं हिंस प्रभावा।
गुरु-सेवा मन-निग्रह[५] होई,
सहनशील मन दृढ़ अति सोई।।७।।

इन्द्रिय-विषय-विरागहि आई,
निजमन से मद दूर भगाई।
जनम-मरन-जरतादि[६] विचारा,
चिन्तन, दुःख आमय[७] बहुबारा।।८।।

१. धी=बुद्धि, २. बाण = पाँच, ३. महाभूता= महाभूत (५ प्रकार के), ४. समूह, ५. मन-निग्रह = आत्मसंयम, ६. बुढापा आदि, ७. आमय = रोग।

असक्तिरनभिष्वङ्गः
पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्व-
मिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।।९।।

मयि चानन्ययोगेन
भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्व-
मरतिर्जनसंसदि ।।१०।।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं
तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्त-
मज्ञानं यदतोऽन्यथा।।११।।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि
यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म
न सत्तन्नासदुच्यते।।१२।।

सर्वतः पाणिपादं तत्-
सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके
सर्वमावृत्य तिष्ठति।।१३।।

धन-घर-पुत्र-नारि महुँ नाहीं,
होय असक्ति, ममत्व[१] सदा ही।
इष्ट, अनिष्ट-प्रीति नित जोई,
सदा होइ समचित्तहि सोई।।९।।

विन व्यभिचार भक्ति हिय आवे,
देश[२]-विशुद्ध एकान्त सुहावे।
विषयासक्त - जनहिं - समुदायी-
प्रेम, अभाव सदा-बनि जाई।।१०।।

होउ अध्यात्म-तत्त्व सुविचारा,
'एहि सब ज्ञान' कहहिं सुधि सारा।
विपरीतहि एहि विधि यदि कोई,
'एहि अज्ञान' कहहि सब कोई।।११।।

'सदा ज्ञेय' जोइ करउँ बखाना,
जानत नर चखि सुधा समाना।
ब्रह्म न कारण, कर्म न होई,
मोर अधीन ब्रह्म नित सोई।।१२।।

होइ सरवत्र पाणि-पद ओही,
शिर, मुख, नेत्र, सबहि दिशि होही।
सबहि ओर तेहि होइहि काना,
ओहि के सब दिशि होइ विताना[३]।।१३।।

---

१. ममता, २. देश= स्थान, ३. विताना = विस्तार।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं
सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव
निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।१४।।

बहिरन्तश्च भूताना-
मचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं
दूरस्थं चान्तिके च तत्।।१५।।

अविभक्तं च भूतेषु
विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं
ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।१६।।

ज्योतिषामपि तज्ज्योति-
स्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं
हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।१७।।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं
ज्ञेयं चोक्तं समासतः।।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय
मद्भावायोपपद्यते ।।१८।।

इन्द्रिय-गुण भासहिं[1] तेहि देही,
इन्द्रिविहीन होइ पर, वेही।
होई अलग, जग-पालक जोई,
अगुण होइ भोगहि गुण सोई।।१४।।

बहि, अन्तर, सब जीवहि भासा,
वह अति दूर कबहुँ अति पासा।
वह अति सूक्ष्म चराचर होई।
वोहि नहिं जानि सकहिं जग कोई।।१५।।

होइ अविभक्त जीव महुँ जोही,
रहत विभक्त सदा प्रभु वोही।
होइ पुनि पालक, नाशक वोही,
जनम-दातृ[2] सब भाँतिहि सोही।।१६।।

ज्योति[3], ज्योति की वह नित होई,
तम से दूर ज्ञान वह सोई।
वसहि सबहिं उर ज्ञेयहिं[4] वोही,
ज्ञान[5] गम्य अति उत्तम सोही।।१७।।

दोहा-

क्षेत्रहि, ज्ञान, सुज्ञेय अति,
वर्णित यह लघु रूप।
तत्त्व जानि अस भक्त गण,
पावहिं मोर स्वरूप।।१८।।

---

१. भासहि = दिखाई पड़ना, मालूम पड़ना।२. दातृ=देने वाला, ३. ज्योति की भी ज्योति, ४. जानने योग्य, ५. बुद्धिगम्य।

प्रकृतिं पुरुषं चैव
विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव
विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।१९।।

कार्यकरणकर्तृत्वे
हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां
भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।२०।।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि
भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य
सदसद्योनिजन्मसु ।।२१।।

उपद्रष्टानुमन्ता च
भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो
देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।।२२।।

य एवं वेत्ति पुरुषं
प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि
न स भूयोऽभिजायते।।२३।।

चौपाई–

प्रकृत पुरुष जानु तुम दोही,
होइ अनादि विचारहु सोई।
समुझहु प्रकृति प्रकट गुण–हीना,
पुनि विकार सब प्रकृति अधीना।।१९।।

करम, करण, कारण सब ओही,
कहहिं 'प्रकृति' श्रुति–पंडित सोही।
सुख–दुख भोग निमित्तहि जानू,
प्रकृति मूल कारण तुम मानू।।२०।।

प्रकृति मध्य रह सब जग–लोगू,
प्रकृति जन्य–गुण भोगहिं भोगू।
उत्तम, अधम योनि जग पाऊ,
होहि सदागुण संग प्रभाऊ।।२१।।

तन महुँ राजत आतम जोही,
परमातम होइहि नित सोही।
साक्षी सबहि सदा अनुमन्ता[३]
स्वामी जग भोगी भगवन्ता।।२२।।

चौपाई–

सगुणा प्रकृति, पुरुष एहि भाँती,
तत्त्व रूप नर बुद्धि समाती।
सकल करम करि एहि प्रकारा,
जगत–जनम नहिं होइ दुबारा।।२३।।

---

१. करम = कार्य, २. कारण= कर्तृत्व , ३. अनुमन्ता = अनुमति देने वाला।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति
केचिदात्मानमात्माना ।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन
कर्मयोगेन चापरे।।२४।।

अन्ये त्वेवमजानन्तः
श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव
मृत्युं श्रुतिपरायणाः।।२५।।

यावत्सञ्जायते किञ्चित्-
सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगा-
त्तद्विद्धि भरतर्षभ।।२६।।

समं सर्वेषु भूतेषु
तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं
यः पश्यति स पश्यति।।२७।।

समं पश्यन्हि सर्वत्र
समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं
ततो याति परां गतिम्।।२८।।

निज तनु आप विलोकहि कोई,
कर्मयोगि योगहि बल सोई।
सांख्य-सुधी निज ज्ञान प्रकाशा,
कोउ करि कर्म योग से पासा[१]।।२४।।

मन्द-बुद्धि कोई, बुध जन साथा
परम पुरुष-विषयक सुनि गाथा।
श्रवण, परायण, नर अस जोई,
मृत्यु-रूप सागर तर सोई।।२५।।

जीव-चराचर, एहि जग जानू,
पार्थ! वचन यह निशचय मानू।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञहि योगा,
जनमहि जग सब जड़ अस लोगा।।२६।।

नाश जीव महुँ, जोइ समभावा,
अक्षय ईश, दरश करिपावा
देखहि सोइ नर हरि सब लेखे,
जोइ जगदीश, एहि-विधि देखे।।२७।।

जो देखहि समभावहि ईशा,
व्याप्त सबहिं उर वह जगदीशा।
नष्ट करहि नहिं निज को जोई,
उच्च परम पद पावहि सोई।।२८।।

१. पासा =अपने पास में, नजदीक में।

प्रकृत्यैव च कर्माणि
क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मान-
मकर्तारं स पश्यति।।२९।।

यदा भूतपृथग्भाव-
मेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं
ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।३०।।

अनादित्वान्निर्गुणत्वा-
त्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय
न करोति न लिप्यते।।३१।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्या-
दाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे
तथात्मा नोपलिप्यते।।३२।।

यथा प्रकाशयत्येकः
कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं
प्रकाशयति भारत।।३३।।

प्रकृति–अधीन, सकल व्यवहारा,
देखहि नर जोइ एहि प्रकारा।
नहिं कछु करम आतमा करई,
अस देखत सोइ देखन सकई।।२९।।

दोहा–

जब, जीवहि की भिन्नता,
एकइ देखत जोइ।
एकहि से विसतार सब,
ब्रह्म पाइ क्षण सोइ।।३०।।

अक्षय, निरगुन ईश उहे;
होइ अनादिहि जोइ।
लिप्त होइ नहिं करइ कछू,
एहितन पारथ! सोइ।।३१।।

यथा–सर्वगत सूक्ष्म नभ,
लिप्त होइ नहिं कोई।
तन–राजत यह आतमा,
देह लिप्त नहिं होई।।३२।।

अर्जुन! जस ब्रह्माण्ड के,
आलोकित करि भानु,
सोइ एकहि यह आतमा,
क्षेत्र प्रकाशक जानु।।३३।।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेव-
मन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च
ये विदुर्यान्ति ते परम्।।३४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

'क्षेत्र' अवर क्षेत्रज्ञ में,
जोइ जानत एहि भेद।
प्रकृति-मुक्ति सोइ युक्ति से,
ब्रह्म प्राप्त करि लेत।।३४।।

विमर्श–

तत्त्व आत्म संयोग से, लोक सृष्टि बुध मान।
परमातम जोइ मानहीं सुरपुर पाइ महान।।

सम्पन्नोऽत्र त्रयोदशोऽध्यायः

●

।।चतुर्दशोऽध्यायः।।

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि
ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे
परां सिद्धिमितो गताः।।१।।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य
मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते
प्रलये न व्यथन्ति च।।२।।

मम योनिर्महद्ब्रह्म
तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां
ततो भवति भारत।।३।।

।। चतुर्दश अध्याय ।।

सन्दर्भ–

दरशन गहन, सुचिन्तन एही, समुझत समुचित भक्ति मिलेही।
कवन, कवन प्रकृती गुण होई, केहि विधि क्रिया करहिं गुण सोई।
केहि प्रकार बाँधइ सब देही, केहि विधि मोक्ष प्रदान करेही।
भगवन निज मुख एहि बखानी, जेहि से सिधि पावत मुनि ज्ञानी।।

श्रीभगवानजी कहनीं

चौपाई–

ज्ञानिहु महुँ अति उत्तम जोई,
तुमहि पुनः बतलावउँ सोई।
जेहि जानत छुट जग–जंजाला,
पाइ परम सिधि होइ निहाला।।१।।

एहि ज्ञानन आश्रित जोइ होई,
दिव्य प्रकृति पावहिं मम सोई।
सृष्टि काल उतपन्न न वोही,
प्रलय काल नहिं विचलित होही।।२।।

भारत! ब्रह्म, श्रोत जग केही,
चेतन गर्भ रखऊँ तेहि में ही।
एहि प्रकार होइहि जब योगा,
तेहि गरभहिं जनमहिं जग लोगा।।३।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय
मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनि-
रहं बीजप्रदः पिता।।४।।

सत्त्वं रजस्तम इति
गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो
देहे देहिनमव्ययम्।।५।।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वा-
त्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति
ज्ञानसङ्गेन चानघ।।६।।

रजो रागात्मकं विद्धि
तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय
कर्मसङ्गेन देहिनम्।।७।।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि
मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभि-
स्तन्निबध्नाति भारत।।८।।

दोहा– सब योनिहु महुँ मूर्ति के,
रूप अनेकहि जोइ।
बीज प्रदायक तात हम,
प्रकृति योनि तहँ सोइ।।४।।

चौपाई–

सत्व, रजोगुण, तम–गुण जोही,
प्रकृति प्रदत्त त्रिगुण नित होही।
सोइ बाँधहि तन–जीवहि कोही,
पार्थ! जीव, अक्षय नित वोही।।५।।

तेहि महुँ सत्वहि करइ विकासा,
निरमल, अनमय करइ प्रकाशा।
सुख ज्ञानादि संग सोइ देही,
बाँधइ अनघ[१]! जीव सब केही।।६।।

नित्य रागमय, राजस जानू,
तृष्णा संग प्रकट सोइ मानू।
तेहि सकामकरमादिक सेही,
कुन्तिपुत्र! बाँधइ सब देही।।७।।

अज्ञानज ही तमोगुण जोही,
भरतपुत्र! सब मोहित वोही।
आलस, निद्रा, घोर प्रमादा,
जीव सकल राखइ नित बाँधा।।८।।

१. अनघ = पापहीन

सत्त्वं सुखे सञ्जयति
रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः
प्रमादे सञ्जयत्युत।।९।।

रजस्तमश्चाभिभूय
सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव
तमः सत्त्वं रजस्तथा।।१०।।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्-
प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्या-
द्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।११।।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः
कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते
विवृद्धे भरतर्षभ।।१२।।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च
प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते
विवृद्धे कुरुनन्दन।।१३।।

सत-गुण-सुख, रजगुण सबकर्मा,
तमगुण छादि[1] ज्ञान अस धर्मा।
पागलपन बाँधइ तम तेही,
भारत! सुबुध[2] बतावहिं एही।।९।।

दोहा-

सतगुण दाबत रजस, तम,
रजगुण, सत - तम - ह्रास[3]।
तेहि विधि सत-रज दाबिके,
तमगुण करत विकास।।१०।।

चौपाई-

तनमहुँ इन्द्रिय सबहिं विकासा,
समझहु सत-गुण करत प्रकासा।
अन्तः चेतन होइ विवेका,
बढ़इ सत्व-गुण लक्षण एका।।११।।

लोभ-प्रवृतिहिं, स्वारथ कामा,
विषय भोग लालस[1] अविरामा[2]।
मन, अशान्त नहिं कछु विश्रामा,
भारत! जानु रजोगुण नामा।।१२।।

होइ अँधेर, प्रवृत्ति न कोई,
मोह-प्रमाद-वृद्धि जब होई।
होहिं प्रकट जब लक्षण वोही,
कुरुनन्दन! तामस गुण सोही।।१३।।

---

१. छादि = ढँकना। २. बुध=ज्ञानी। ३. क्षति, दबाना,

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु
प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोका-
नमलान्प्रतिपद्यते ।।१४।।

रजसि प्रलयं गत्वा
कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि
मूढयोनिषु जायते।।१५।।

कर्मणः सुकृतस्याहुः
सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःख-
मज्ञानं तमसः फलम्।।१६।।

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं
रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो
भवतोऽज्ञानमेव च।।१७।।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था
मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था
अधो गच्छन्ति तामसाः।।१८।।

जीव मरहिं जब सतगुण पाई,
निरमल ज्ञानि-लोक सोइ जाई।
एहि प्रकार प्रिय पारथ पाहीं,
युद्ध भूमि महुँ, प्रभु समुझाहीं।।१४।।

रज-गुण-वृद्धि मरहिं जब देही,
कर्मासक्त मिलहि तनु तेही।
तमगुण-वृद्धि मरहि जब कोई,
कीट पतंग मूढ़ पशु होई।।१५।।

पुण्य करम फल शुभद सदाही,
सात्विक, ज्ञानद, विमल कहाही।
रज गुण करम दुखदफलकारी,
तामस-फल, अज्ञानहि भारी।।१६।।

सतगुण करइ सुज्ञान प्रबोधा,
रजगुण करि मन अतिशय लोभा।
तम-गुण मोह प्रमादिक होई,
पुनि सद्ज्ञान विनाशक सोई।।१७।।

सात्विक, ऊर्ध्व सरग महुँ जाहीं,
राजस नर, नरलोकहि पाहीं।
तामस नर नित नीचहि जाई,
जहाँ जाइ नरकादिक पाई।।१८।।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं
यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति
मद्भावं सोऽधिगच्छति।।१९।।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्-
देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखै-
र्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ।।२०।।

अर्जुन उवाच

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेता-
नतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतां-
स्त्रीन्गुणानतिवर्तते ।।२१।।

श्रीभगवानुवाच

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च
मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि
न निवृत्तानि काङ्क्षति।।२२।।

उदासीनवदासीनो
गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव
योऽवतिष्ठति नेङ्गते।।२३।।

तजि त्रिगुणादि न करता[१] कोई,
जब द्रष्टा नर देखत सोई।
गुणातीत परमेश्वर मोहीं,
मानहिं, पाइ परमपद सोहीं।।१९।।

त्रिगुण-एहि लाँघहिं जब देही,
जरा-मृत्यु-दुख होहिं न तेही।
एहि जीवन महुँ वह नर तबही,
सुधा-भोग सुख पावत सबही।।२०।।

अरजुन कहलें

गुणातीत नर लक्षण के ही,
कस आचार होहिं नर तेही।
त्रय-गुण लाँघत केहि प्रकारा,
गुड़ाकेश कह जगदाधारा[२]।।२१।।

श्रीभगवानजी कहनीं

पाइ प्रकाश, प्रवृत्ति न मोहा,
नहिं कछु करइ इनहिं से द्रोहा।
यदि नहिं मिलहिं न लालच कोई,
गुणातीत नर लक्षण सोई।।२२।।

उदासीन रह सबगुण से ही,
होहिं कबहुँ नहिं विचलित वे ही।
त्रिगुण करहिं जग कारज सबहीं,
अस जिय-जानि डिगत[३] नहिं कबहीं।।२३।।

---

१. करता = कर्त्ता=करनेवाला। २. भगवान। ३. डिगत=विचलित होना।

समदुःखसुखः स्वस्थः
समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीर-
स्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।२४।।

मानापमानयोस्तुल्य-
स्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी
गुणातीतः स उच्यते।।२५।।

मां च योऽव्यभिचारेण
भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्-
ब्रह्मभूयाय कल्पते।।२६।।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाह-
ममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य
सुखस्यैकान्तिकस्य च।।२७।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

सुख-दुख महुँ रह सम नर जोई,
मृदा[१] अश्म[२] हाटक[३] सम[४] होई।
निन्दास्तुति जोइ जानि समाना,
अप्रिय-प्रिय सब तुल्यहि माना।।२४।।

मान-अमान, समानहि जाने,
बन्धु, वैरि समभावहि माने।
सर्वारम्भ[५] करहिं परित्यागा,
गुणातीत नर सोइ सुभागा।।२५।।

निश्चल, शुद्ध, भक्ति-युत जोही,
सेवत मोहिं सतत जन सोही।
होइ पार गुण तीनहुँ लाँघी।
ब्रह्म-भाव पावत बड़ भागी।।२६।।

चौपाई-

अव्यय[६] ब्रह्म सनातन जेही,
पुनि शुचि धरम सनातन केही।
आश्रय हमहिं सबहि आखण्डा[७],
हमहिं एक रस मोद अनन्दा।।२७।।

निचोड़-

नवधा भगति करहिं अभ्यासा, जेहि उर उपजइ दिव्य प्रकाशा।
करहिं भगत सँग, भगतिहि बाता, ध्यावहिं कृष्ण चरण जल जाता।[८]

●

---

१. मिट्टी। २. पत्थर। ३. सोना, स्वर्ण। ४. समान। ५. सारे सांसारिक भौतिक कार्य। ६. अमर।
७. पूर्णतः। ८. जलजाता = कमल।

।। पञ्चदशोऽध्यायः ।।

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाख-
मश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि
यस्तं वेद स वेदवित्।।१।।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।२।।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।३।।

।। पञ्चदश अध्याय ।।

सन्दर्भ–

श्रुति अध्ययन प्रयोजन एका, कृष्ण तत्त्व समुझहिं सब लेखा।
सकल जगत पीपर तरु सोई, नीचे डाढ़ि उपर जड़ होई।
वैदिक पाठ, एहि तरु–पाती, निज उन्नति हित होइ संघाती।
भव बन्धन यह वृक्ष कहाई, कृष्ण भजन एहि मुक्ति दिलाई।।

श्रीभगवानजी कहनीं

चौपाई–

ऊपर मूल शाख जेहि नीचे,
पात होंहि नित छन्द सरीखे।
एहि प्रकार तरु जानहिं जोई,
उच्च वेद–ज्ञानी सोइ होई।।१।।

ऊपर–नीच प्रसृत[१] तरु शाखा,
प्रकृति–तीन–गुण पोषित राखा।
इन्द्रिय विषय–टहनियाँ[२] जाहीं,
कर्म–सकाम बँधहि जग माहीं।।२।।

एहि जग वृक्ष स्वरूप न कोई,
आदि, मध्य अवसान न होई।
एहि पीपल तरु अति दृढ़ मूला,
शस्त्र[३] विरक्ति[४] करहिं निरमूला।।३।।

---

१. प्रसृत = विस्तीर्ण, फैला हुआ। २. टहनी। ३. हथियार। ४. वैराग्य।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।४।।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।५।।

न तद्भासयते सूर्यो
न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते
तद्धाम परमं मम।।६।।

ममैवांशो जीवलोके
जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि
प्रकृतिस्थानि कर्षति।।७।।

शरीरं यदवाप्नोति
यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति
वायुर्गन्धानिवाशयात्।।८।।

तब तेहि पद खोजहिं तहँ जाई,
जाइ जहाँ यति लौट न पाई।
आद्य पुरुष शरणागत होऊ,
प्रसृत जहाँ चिरकालहि सोऊ।।४।।

छन्द छप्पय–

अक्षय–परम–पद मिलहि सुधिवर,
कर, मन–सतत् रत ईश में।
एहि दोउ चमु[१] के मध्य महुँ,
अस सीख दी 'जगदीश'[२] ने।।५।।

चौपाई–

जेहि पद पाइ जगत नहिं आई,
परम धाम वह मोर सुहाई।
नहिं, रवि, शशि, पावक, महुँ कोई,
करि सकि धाम प्रकाशित सोई।।६।।

एहि नर लोक जीव–समहंसा,
सबहिं हमार सनातन अंसा।
प्रकृति–बद्ध जीवन–हित सोही,
खींचत नित छव[३] इन्द्रिय कोही।।७।।

सुमन[४]–सुगन्ध अनिल[५] जेहि भाँती,
ग्रहण करत पुनि छोड़त साथी।
तेहि विधि जीव धरहि तन कोही,
या त्यागत तन जीवहि वोही।।८।।

१. चमु = सेना। २. श्रीकृष्ण जी। ३. छव इन्द्रियाँ यथा– (कान, नाक, आँख, जीभ, चमड़ा, मन)। ४. सुमन=फूल। ५. अनिल =हवा।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं
च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं
विषयानुपसेवते ।।९।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि
भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति
पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।१०।।

यतन्तो योगिनश्चैनं
पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो
नैनं पश्यन्त्यचेतसः।।११।।

यदादित्यगतं तेजो
जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ
तत्तेजो विद्धि मामकम्।।१२।।

गामाविश्य च भूतानि
धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः
सोमो भूत्वा रसात्मकः।।१३।।

कर्ण, चक्षु, रसना, त्वक् घ्राणा,
पुनि मन आश्रय कर यह प्राणा।
एहि आश्रित यह तन-मन सबहीं,
इन्द्रि-विषय सब सेवन करहीं।।९।।

गमन करत, तन त्यागत जोही,
भोगत रहत गुण-त्रय[१] कोही।
सेवन करत जीव सब सोही,
जानहिं विज्ञ[२], अविज्ञ न वोही।।१०।।

यतन करत यति निज हृद देखी,
निज महुँ निवसत ब्रह्म विशेषी।
पर अन्तरमन शुद्ध न जाही,
करत प्रयास मूढ़ मति नाहीं।।११।।

दोहा--

भानु-प्रभा-भव भासित,
सोइ निरगत[३] मम गात।
चन्द्र किरण होइ मोहिं से,
पावक तप मम[४] ताप।।१२।।

दोहा- क्षिति महुँ बस निज ओज[५] से,
धारउँ जीव अशेष[६]।
सोम[७] होइ रस बाटऊँ,
हम निज-शक्ति विशेष।।१३।।

---

१. गुण त्रय= काम, क्रोध, लोभादि। २. विज्ञ= विद्वान्। ३. निकलना। ४. मम = मोरा। ५. ओज सत्व, सामर्थ्य। ६. अशेष=पूर्णतः। ७. सोम=चन्द्रमा।

अहं वैश्वानरो भूत्वा
प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः
पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।१४।।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो-
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।१५।।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके
क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि
कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।१६।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः
परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य
बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।१७।।

यस्मात्क्षरमतीतोऽह-
मक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च
प्रथितः पुरुषोत्तमः।।१८।।

चौपाई–

बनि हम प्राण, अंपान समीरा,
बसउँ नित्य सब जीव शरीरा।
वैश्वानर[१] बनि चारि प्रकारा,
पाचन करउँ सुभोजन सारा।।१४।।

सकल जीव हृदि हमहिं विराजे,
स्मृति ज्ञानादि अपोहन[२] साथे।
श्रुति विद्, वेद-वेद्य मोहिं जानू,
हमहिं वेदान्त सृजक' एहि मानू।।१५।।

क्षर[३] एहि जग, जनमत जन जोही,
क्षर अरु अक्षर, पुरुष दोउ होही।
सकल जीव-तन होइहि, नाशा,
जीव-आत्म, पर, नित अविनाशा।।१६।।

एहि दोउ इतर[४] पुरुष एक होई,
प्रविसि लोक तिहुँ पोषहि जोई।
सोइ उत्तम नर नित अविनाशी,
जगत, जेहि परमेश्वर भाषी[५]।।१७।।

दोहा–

क्षर अरु अक्षर इतर हम,
श्रेष्ठ पुरुष जग सिद्ध।
लोक, वेद परमेश्वर
नाम हमार प्रसिद्ध।।१८।।

---

१. वैश्वानर=अग्नि। २. अपोहन=विस्मरण। ३. नश्वर ४. दूसरा। ५. भाषी= कहता है।

यो मामेवमसम्मूढो
जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां
सर्वभावेन भारत।।१९।।

इति गुह्यतमं शास्त्र-
मिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्या-
त्कृतकृत्यश्च भारत।।२०।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

●

चौपाई–

जोइ जानत पुरुषोत्तम मोहीं
संशय–रहित भजत नर सोही।
सोइ सर्वज्ञ होइ जग एही,
भज, परमेश्वर भारत! तेही।।१९।।

गुप्तहि–गुप्त सुज्ञान महाना,
अनघ! पार्थ! सब हमहिं बखाना।
तत्त्वरूप जानत, जन–जोई,
सोई कृत कृत्य बुद्धि–मत होई।।२०।।

निचोड़– (चौपाई)–

प्रबला भक्ति विमल अति होई, एहि–पथ, पथिक चलत यदि कोई।
सोइ अनघ[१] अर्जुन की भाँती, तेहि उर कृष्ण सुभक्ति समाती।।

पूर्णोऽयम् पञ्चदशोध्यायः

●

---

१. अनघ = पापहीन।

।।षोडशोऽध्यायः।।

श्रीभगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धि-
र्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च
स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।१।।

अहिंसा सत्यमक्रोध-
स्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं
मार्दवं ह्रीरचापलम्।।२।।

तेजः क्षमा धृतिः शौच-
मद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवी-
मभिजातस्य भारत।।३।।

।। षोडश अध्याय ।।

सन्दर्भ–

दैवी आसुरि प्रकृति के, बरनन एक समान।
अरजुन के समुझावहीं, कृपासिन्धु भगवान।
वर्णाश्रम के नियम के, जेहि शासित सब होय।
एहि सोलह अध्याय में, प्रभु बतलावहिं सोय।।

श्रीभगवानजी कहनीं

चौपाई–

निर्भयता – दम – मन शुचिताई,
सुदृढ़ ज्ञान सरल मति पाई।
तप, मख, पठन, सतत श्रुति ज्ञाना,
योग–युक्त पुनि सात्विक ज्ञाना।।१।।

मृदुमन, सत्य, अहिंसक भावा,
शान्त करुण–मन क्रोध न आवा।
अचपलता, ह्री[1] निन्द कभी ना,
त्याग–भाव अरु लोभ विहीना।।२।।

क्षमा, तेज, धृति पावनताई,
मान–हीन मन क्रोध न आई।
भारत! एहि लक्षण जेहि होई,
दैवि–सम्पदा–युत नर सोई।।३।।

१. ह्री = लज्जा

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च
क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य
पार्थ सम्पदमासुरीम्।।४।।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय
निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवी–
मभिजातोऽसि पाण्डव।।५।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मि–
न्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त
आसुरं पार्थ मे शृणु।।६।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च
जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो
न सत्यं तेषु विद्यते।।७।।

असत्यमप्रतिष्ठं ते
जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं
किमन्यत्कामहैतुकम्।।८।।

मिथ्याचार, क्रोध, मदमाना,
बचन[१] कठोर अवर[२] अज्ञाना।
एहि लक्षण भारत! जेहि आवे,
आसुरि भाव सोइ कहलावे।।४।।

दैवि सम्पदा मुक्ति दिलाई,
पर आसुरि नित बन्धन दायी।
अर्जुन! शोक करहु नहिं कोई,
दैवि सम्पदा सँग तुम होई।।५।।

एहि नरलोक, सृष्टि दोउ भाँती,
तेहि दैवी अरु आसुर जाती।
कहेउ दैवि विसरताराहि - से ही,
सुनु पारथ अब आसुरि के ही।।६।।

दोहा–

काहि प्रवृत्ति, निवृत्ति जग,
जानत आसुरि नाहिं।
सत्य, शुद्धि, आचार सब,
होहिं नाहिं तेहि माँहि।।७।।

आसुरि कह, जगमूढ़ बा,
विनु ईश्वर आधार।
मात्र आपसी योग से,
भोग हेतु संसार।।८।।

१. पारुषवचन = कठोर वचन। २. अवर = और

एतां दृष्टिमवष्टभ्य
नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः
क्षयाय जगतोऽहिताः ।।९।।

काममाश्रित्य दुष्पूरं
दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहा-
न्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।१०।।

चिन्तामपरिमेयां च
प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा
एतावदिति निश्चिताः ।।११।।

आशापाशशतैर्बद्धाः
कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थ-
मन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।१२।।

इदमद्य मया लब्ध-
मिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।।
इदमस्तीदमपि मे
भविष्यति पुनर्धनम् ।।१३।।

अस विचार धरि मूढ़ नर,
आत्मबोध गत जोइ।
मंदबुद्धि अपकार-रत,
क्रूर, विनाशक सोइ।।९।।

चौपाई-

दम्भ, मान, मद सहितहि जोई,
कर्म अपूर्य[1]-अधारित सोई।
होइ मोह वश नित-नर सोही,
अशुचि, असत्, आग्रह युत होही।।१०।।

मरण-काल तक चिन्ता व्यापी,
करत अनन्त दुखी दिन-राती।
भोग-विषय-रत, मन, नित वोही,
परमानन्द कहहिं-जन सोही।।११।।

आशा पाश-बन्ध निज बाँधी,
कामहि, क्रोध, सदा मन लागी।
करि अन्याय धनागम करहीं,
सुख भोगादि हेतु दुःख सहहीं।।१२।।

छप्पय छन्द-

सोचहि सदा मोहिं मिलहि सब
अब कामना पूरण करूँ।
अति द्रविड़[2]-पति हम भयउ पुनि,
अब अवर पासहि महुँ[3] धरउँ।।१३।।

---

१. अपूर्य = जो पूर्ण न हो सके। २. द्रविड़पति = धनवान, ३. पासहि महुँ = अपने पास रखूं, अपने कोश में रखूँ।

असौ मया हतः शत्रु-
र्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी
सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।।१४।।

आढ्योऽभिजनवानस्मि
कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य
इत्यज्ञानविमोहिताः ।।१५।।

अनेकचित्तविभ्रान्ता
मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु
पतन्ति नरकेऽशुचौ।।१६।।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा
धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते
दम्भेनाविधिपूर्वकम् ।।१७।।

अहङ्कारं बलं दर्पं
कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु
प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।।१८।।

बहु अरि विनाशक भयउ हम,
अरु, अपर अरि अब मारही।
मख, दान, सुख हम नित करहिं,
पुनि सिद्ध, सुखि बलवान ही।।१४।।

चौपाई–

हमहिं कुलीन, धनी अति होऊँ,
मोहिं समान दूसर नहिं कोऊ।
यज्ञ, दान, सुख हम नित करहीं,
मूढ़, विमोहित, नर अस कहहीं।।१५।।

दोहा–

चिन्ता विविध बिचैन मन,
मोह बन्ध फँसि जाहिं।
काम, भोग आसक्ति-रत,
घोर नरक सोइ पाहिं।।१६।।

चौपाई–

मानहिं श्रेष्ठ सबहि जन आपे,
धन, मद, मोह मान मति ताके।
विधि-विहीन मख किञ्चित करहीं,
विविध विधान मूढ़ आचरहीं।।१७।।

काम, क्रोध, बल, मद वश होई,
परनिन्दा-रत नित जन सोई।
पर निज देह वसत हमही से,
करहिं द्वेष आसुरि सबहीं से।।१८।।

१. अशुचि = अपवित्र, गंदा।

तानहं द्विषतः क्रूरान्
संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभा-
नासुरीष्वेव योनिषु।।१९।।

आसुरीं योनिमापन्ना
मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय
ततो यान्त्यधमां गतिम्।।२०।।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं
नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभ-
स्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।२१।।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय
तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो
याति परां गतिम्।।२२।।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य
वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति
न सुखं न परां गतिम्।।२३।।

द्वेषी, क्रूर, नराधम जेही,
आसुरि योनिहि डालउँ तेही।
करउँ सदा एहि भाँति विधाना,
एहि प्रकार बोलेउ भगवाना।।१९।।

तेहि, मतिमन्द पाइ नहिं मोहीं,
पुनि पावहिं नीचहि गति कोहीं।
जनम-जनम आसुरि गति पाई,
कुन्तिपुत्र! मोहिं पाइ न पाई।।२०।।

काम क्रोध लालच मिलि जोई,
तीनहुँ द्वार नरक के होई।
आत्मानाश करहिं सब एही,
तीनि, त्याज्य एहि कारण से ही।।२१।।

दोहा–

नरक़-द्वार से मुक्त होई
पार्थ! सदा नर जोइ।
शुभ आचरण करहिं नित,
पाइ परम गति सोइ।२२।।

शास्त्र-विधान-विहाइ नर,
करि मन माना कर्म।
नहिं कछु सिद्धि न परम गति,
होहिं नष्ट सब धर्म।।२३।।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते
कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं
कर्म कर्तुमिहार्हसि।।२४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।

कर्म-अकर्म विचार में
मानहिं शास्त्र प्रमान।
शास्त्रविहित सब कर्म के,
तुम ही योज्ञ महान।।२४।।

विमर्श-

एहि सोलह अध्याय के,
सरल भाव एहि सार।
शास्त्र नियम पालन करही,
सोइ सुधि सबहि प्रकार।।

पूर्णोऽयम् षोडशोऽध्यायः

●

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य
यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण
सत्त्वमाहो रजस्तमः।।१।।

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा
देहिनां सा स्वभावजा।
सात्विकी राजसी चैव
तामसी चेति तां शृणु।।२।।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य
श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो
यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।३।।

सप्तदश अध्याय

सन्दर्भ–

सत रज तम गुण संग से, श्रद्धा तीनि प्रकार।
एहि अध्याय विवेक से–वरनित शास्त्र विचार।।

अर्जुन कहलें

चौपाई–

कहेउ पार्थ केशव! कह मोहीं,
शास्त्र–विधान–त्यागि जन जोहीं।
श्रद्धायुत नित पूजन करहीं,
सत, रज, तामस, का विधि कहहीं।।१।।

श्री भगवान जी कहनीं

श्रद्धा सहज भाव अनुसारा,
सत, रज, तामस तीनि प्रकारा।
सूनहु[1] मोहिं कहउँ हम तोही,
प्रभु समझावत पारथ कोही।।२।।

अन्तर्मन अनुरूपहि होही,
भारत! श्रद्धा, जन, मन, वोही।
श्रद्धामय नर होइहि जइसे,
तेहि अनुरूप होहिं वह वइसे।।३।।

---

१. सूनहु = सुनहि

यजन्ते सात्त्विका देवा-
न्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये
यजन्ते तामसा जनाः।।४।।

अशास्त्रविहितं घोरं
तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः
कामरागबलान्विताः ।।५।।

कर्शयन्तः शरीरस्थं
भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं
तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।६।।

आहारस्त्वपि सर्वस्य
त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं
तेषां भेदमिमं शृणु।।७।।

आयुःसत्त्वबलारोग्य-
सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या
आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।८।।

सात्विक, नर पूजहिं शुभ देवा,
राजस, यक्ष-राक्षसी सेवा।
पूजहिं तामस, भूत पिशाचा,
कह केशव पारथ अस वाचा[१]।।४।।

तपहिं घोर तप नर अस जोही,
शास्त्र विधान विहाइहि सोही।
मद, दम्भादि युक्त तेहि भावा,
काम, राग, बल तेहि सुहावा।।५।।

भौतिक तत्त्व एहि तन जोई,
भीतर वसत ब्रह्म हम सोई।
दोउहु कष्ट देइ जन जेही,
आसुर मूढ़ जानु जन तेही।।६।।

भोजन जोइ होइ नर प्यारा,
प्रकृति विवश सोइ तीनि प्रकारा।
तेहि विधि यज्ञ, तपादिक दाना,
होहिं तीन, सुनु कह भगवाना।।७।।

छन्द छप्पय-

नैरोग्यता, बल बुद्धि-सुख,
पुनि आयु प्रीति विवर्धका।
रस युक्त, पिच्छल[२], हृद्य, थिर,
अरु सहज मन-मुद बर्धका।।८।।

---

१. वाचा = वाणी, बात। २. पिच्छल = चिकना।

कट्वम्ललवणात्युष्ण-
तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा
दुःखशोकामयप्रदाः ।।९।।

यातयामं गतरसं
पूति पर्युषितं च यत्।।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं
भोजनं तामसप्रियम्।।१०।।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो
विधिदृष्टो य इज्यते।।
यष्टव्यमेवेति मनः
समाधाय स सात्त्विकः।।११।।

अभिसन्धाय तु फलं
दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ
तं यज्ञं विद्धि राजसम्।।१२।।

कद्वम्ल, दाहक, तीक्ष्ण, अरु,
नमकीन, रूखे उष्ण जे।
दुःख, शोक आमय[१] सोइ करे,
प्रिय होहिं राजस पुरुष के।।९।।

याम–गत[२], गत–रस पुनः
अति पूति[३], बासी जूठ जे,
आछूत[४] विकृत, साथ ही,
रुचिहीन होवहिं भोज्य[५] तेइ।

प्रकृति मिलिहि जेहि तामसी,
तेहि पुरुष के प्रिय होइ वही,
एहि भाँति ही गुडकेश से,
गुण तामसी होइहि वही।।१०।।

चौपाई–

तज फल–आश शास्त्र अनुसारा,
होहिं यज्ञ जोइ विविध प्रकारा।
मन, थिर, करि मख, एहि विधि जोई,
नहिं संशय सोइ सात्विकि होई।।११।।

जेहि उर वसत, सतत फल कामा,
मिलिहिं जाहि विधि जग–यश, नामा।
दम्भाचरण जानु मख वो ही,
भरत श्रेष्ठ! सुनु राजस सोही।।१२।।

---

१. आमय=रोग। २. यामगत्=भोजन करने से तीन घंटे पहले पका हुआ। ३. पूति = सड़ा हुआ, महक युक्त। ४. आछूत = अस्पृश्य। ५. भोज्य=खाने लायक, खाने की सामग्री।

विधिहीनमसृष्टान्नं
मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं
तामसं परिचक्षते।।१३।।

देवद्विजगुरुप्राज्ञ-
पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च
शारीरं तप उच्यते।।१४।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं
सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायभ्यासनं चैव
वाङ्मयं तप उच्यते।।१५।।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं
मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येत-
त्तपो मानसमुच्यते।।१६।।

श्रद्धया परया तप्तं
तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः
सात्त्विकं परिचक्षते।।१७।।

विधि-विहीन, बिन मंत्रहि दाना,
श्रद्धा रहित यज्ञ-विधि नाना।
दान दक्षिणा नहिं कछु देही।
तामस यज्ञ कहहिं सब तेही।।१३।।

सुर-गुरु, विप्र, विज्ञ-सेवकाई,
ब्रह्मचर्य, शुचिता-सरलाई।
हिंसा-हीन-कर्म सब जेही,
तन-तप[1] कहत शास्त्र सब तेही।।१४।।

सत्य वचन, प्रिय, पुनि हितकारी,
विनु उदवेग करम शुभकारी।
वेदाध्ययन, शास्त्र अभ्यासा,
वाणी-तप तेहि कहहिं सुदासा[2]।।१५।।

मन-प्रसन्न, अति शान्त सुभावा,
निज संयम अति शुद्ध विभावा[3]।
मन गम्भीर, कपट नहिं कोई,
मानस-तप जानहिं जग सोई।।१६।।

दोहा-

योग-युक्त[4] श्रद्धा सहित,
फल के काम विहाइ।
तप जोइ तपहिं त्रिविध विधी,
सोइ सात्विक-कहलाइ।।१७।।

१. शरीर की तपस्या, २. सुदासा =सद्भक्त, ३. विभाव= मन की भावना। ४. योग युक्त= कामहीन साधना।

सत्कारमानपूजार्थं
तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं
राजसं चलमध्रुवम्।।१८।।

मूढग्राहेणात्मनो यत्-
पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा
तत्तामसमुदाहृतम् ।।१९।।

दातव्यमिति यद्दानं
दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च
तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।२०।।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं
फलमुद्दिश्य वा पुनः।।
दीयते च परिक्लष्टं
तद्दानं राजसं स्मृतम्।।२१।।

अदेशकाले यद्दान-
मपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं
तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२।।

आदर, पूजा, मान, हित,
दम्भ सहित तप जोइ।
नहिं शाश्वत फल जाहि के,
सोइ राजस-तप होइ।।१८।।

जोइ मूढ़-हठ-योग से,
तन - मन - पीड़ा होइ।
अथवा जो पर-हानिहित,
तप, तामस कह सोइ।।१९।।

चौपाई–

यह शुभ करम, सोचिकर, दाना,
समुचित, काल, पात्र सनमाना।
प्रत्युपकार[1] आस बिन जोई,
तेहि जन-दान सात्विकी होई।।२०।।

प्रति उपकार सोचि जोइ दाना,
अथवा होइ बिना सनमाना।
काल-काम-वश, दानहि जोई,
राजस दान कहहिं सब कोई।।२१।।

बिनु शुचि देश, समय के ज्ञाना,
अनुचित व्यक्ति न समुचित ध्याना।
विन सम्मान देइ जेइ दाना,
ताकर तामस होइहि नामा।।२२।।

---

१. प्रत्युपकार– उपकार के लिए उपकार (लाभ के लिए उपकार करना)।

ॐ तत्सदिति निर्देशो
ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च
यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।२३।।

तस्मादोमित्युदाहृत्य
यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः
सततं ब्रह्मवादिनाम्।।२४।।

तदित्यनभिसन्धाय
फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः
क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।।२५।।

सद्भावे साधुभावे च
सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा
सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।२६।।

यज्ञे तपसि दाने च
स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं
सदित्येवाभिधीयते ।।२७।।

ॐ तत्, सत्, तीनहुँ संकेता,
ब्रह्म बोध हित, कह श्रुति वेता।
वैदिक मन्त्र विप्र उच्चरहीं,
ब्रह्म-तुष्टि हित योजन[१] करहीं।।२३।।

ब्रह्म-प्राप्ति हित श्रुति अनुसारा,
यज्ञ, दान, तप, करहिं अचारा।
यति सब ओमिति शब्द उच्चारे,
ब्रह्मवादि, हरि सतत पुकारे।।२४।।

शुभ-इच्छुक, त्यागहि फल-कामा,
सतत् प्रयोजहिं सब 'सत' नामा।
मख, तप, दान-क्रिया बहु जोई,
भवबन्धन-मोचन हित होई।।२५।।

सब, सद्-सन्त, सतत् 'सत्' कहहीं
साधुभाव हित योजन करहीं।
पार्थ! सकल उत्तम जोइ करमा।
तहँ 'सत्' शब्द प्रयोजन धरमा।।२६।।

यज्ञ, दान, तप, व्रत त्यौहारा,
ब्रह्म तुष्टि-हित करमहिं-सारा।
सोइ सब करम सदा शुभ होई,
कहहिं शास्त्रविद् निश्चय सोई।।२७।।

**अश्रद्धया हुतं दत्तं
तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ
न च तत्प्रेत्य नो इह।।२८।।**

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

दोहा–

हवन, दान, शुभ-तप्त तप,
बिन श्रद्धा होइ जोइ।
पार्थ! "असत" तेहि कहहिं सब,
उभय जन्म-हत होइ।।२८।।

निचोड़– (चौपाई)

शुद्ध भगत संगत वश कोई, कृष्ण भगति पावत ज़न जोई।
अति उत्तम मारग यह होई, ईश्वर प्रेम कहत कवि सोई।।

पूर्णोऽयम् सप्तदशोऽध्यायः

●

---

१. यौजन = एकत्रीकरण, (शब्दकोष)

अष्टादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

सन्न्यासस्य महाबाहो
तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश
पृथक्केशिनिषूदन।।१।।

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं
सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं
प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।।२।।

त्याज्यं दोषवदित्येके
कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म
न त्याज्यमिति चापरे।।३।।

निश्चयं शृणु मे तत्र
त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र
त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः।।४।।

।। अष्टादश अध्याय ।।

सिन्धु[१] इन्दु[२] अध्यायन में ही भगवतगीत कथित-प्रभु से ही।
केशि असुर सम दुरजय जेही; संशय-असुर बधहु प्रभु सोही।
अर्जुन विनय करहि प्रभु जइसे, एहिं अध्याय कथित सब वइसे।

अर्जुन कहलें

केशिनिषूदन! हे महबाहूँ,
हृषीकेश! मैं जानन चाहूँ।
भिन्नरूप सन्यासहि केही,
त्याग-तत्व पुनि सब विधि एही।।१।।

श्रीभगवानजी कहनीं

काम्य कर्म, न्यासहि, सन्यासा,
ज्ञानी पुरुष कहहिं परिभाषा।
अपर करम-फल-त्याग अशेषा,
विज्ञ पुरुष बतलाइ विशेषा।।२।।

सकल करम-फल दूषित होई,
अतः त्याज्य, कह पंडित कोई।
तप, मख, दान, त्याज्य होइ नाहीं,
अपर शास्त्रविद् यह बतलाहीं।।३।।

सुनहु पार्थ! सच मोर विचारा,
त्याग-सुतथ्य कहउँ तोहिसारा।
पुरुष व्याघ्र! यह तीनि प्रकारा,
वरनउँ तोहि सकल विसतारा।।४।।

१. सिन्धु =सागर = ७, २. इन्दु = (एक) अंकानां वामतो गतिः।

यज्ञदानतपःकर्म
न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव
पावनानि मनीषिणाम्।।५।।

एतान्यपि तु कर्माणि
सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ
निश्चितं मतमुत्तमम्।।६।।

नियतस्य तु सन्न्यासः
कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्याग-
स्तामसः परिकीर्तितः।।७।।

दुःखमित्येव यत्कर्म
कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं
नैव त्यागफलं लभेत्।।८।।

कार्यमित्येव यत्कर्म
नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव
स त्यागः सात्त्विको मतः।।९।।

मख, तप, दान, करम कर लोगू,
कबहुँ न होइहि छोड़न योगू।
यज्ञ, दान, तप उत्तम हो हीं,
करहिं शुद्ध सब सन्तन जोहीं।।५।।

नहिं फल-काम लालसा तेही,
बिन आसक्ति करम सब एही।
यह करणीय धरम निज मानी,
पार्थ! सुमत मम उत्तम जानी।।६।।

नियत करम परिहरहु न कबहूँ,
वेद-पुरान बतावत सबहूँ।
मोह विवश यदि छोड़हि कोई,
'त्याग तामसी' सब कह को सोई।।७।।

तन-पीड़ा, दुःख से भय-भीता,
होइहि त्याग, करम-सब हीका।
'राजस त्याग' कहत जन एही,
त्याग-लाभ कछु मिलइ न तेही।।८।।

तज, फल-संग[१], करहि निज करमा,
शास्त्रविहित विधि, मानहिं धरमा।
'सात्विक त्याग' कहहिं सब वोही,
अर्जुन तथ्य बतावउँ - तोहीं।।९।।

१. संग = आसक्ति।

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म
कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो
मेधावी छिन्नसंशयः।।१०।।

न हि देहभृता शक्यं
त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी
स त्यागीत्यभिधीयते।।११।।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च
त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य
न तु सन्न्यासिनां क्वचित्।।१२।।

पञ्चैतानि महाबाहो
कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि
सिद्धये सर्वकर्मणाम्।।१३।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता
करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा
दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।१४।।

अकुशल[२]-कर्म, द्वेष नहिं करहीं,
पुनि शुभ कर्म, संग[३] नहिं धरहीं।
शुद्ध, सत्व गुण युत, नर सोई,
संशय छिन्न त्यागि वह होई।।१०।।

दोहा–

संभव होइ कबहुँ नहीं,
देही तज सब काम।
सकल कर्म–फल त्यागहीं,
त्यागी सोइ महान।।११।।

पाइ, सकामी तन तजि,
फल शुभ अशुभ मिलाइ।
त्यागी पुरुष कदापि ना,
एहि त्रिविध फल पाइ।।१२।।

पाँचहिं कारण जानु जेही,
पार्थ! होहिं सब काम।
सांख्यशास्त्र दर्शन अब,
मोहिं से सुनहु महान।।१३।।

चौपाई–

कर्ता, तन, इन्द्रिय बहु भाँती,
विविध भाँति चेष्टा दिखलाती।
परमातम पञ्चम यह होई,
कारण पाँचप्रकारहि सोई।।१४।।

२. अकुशल = अशुभ, ३. असन्देह, शंका रहित।

शरीरवाङ्मनोभिर्य-
त्कर्म प्रारभते नरः।।
न्याय्यं वा विपरीतं
वा पञ्चैते तस्य हेतवः।।१५।।

तत्रैवं सति कर्तार-
मात्मानं केवलं तु यः।।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वा-
न्न स पश्यति दुर्मतिः।।१६।।

यस्य नाहङ्कृतो भावो
बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।।
हत्वापि स इमाँल्लोका-
न्न हन्ति न निबध्यते।।१७।।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता
त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति
त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।।१८।।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च
त्रिधैव गुणभेदतः।।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने
यथावच्छृणु तान्यपि।।१९।।

तन, मन, बचन, करहिं जन जोई,
करम, सकल जग, एहि विधि होई।
न्यायपूर्ण, अनुचित अपि जोही,
पाँच, एहि सब कारण होहीं।।१५।।

पर, कर्ता मानहि निज जोई,
वह मति मलिन पतित नित होई।
शुद्ध बुद्धि अल्पउ[1] नहिं तेही,
सत्य तथ्य जानत नहिं वेही।।१६।।

अहंकार नहिं जेहि मन आवे,
लिप्सा-लिप्त बुद्धि नहिं पावे।
सोइ मारि मारत नहिं केही,
जगबन्धन बाँधत नहिं तेही।।१७।।

ज्ञान, ज्ञेय ज्ञाता मिलि केहि,
कर्म-प्रेरणा दे नित एही।
कर्ता, कर्म, क्रिया मिलि जोही,
रचहि कर्म-संग्रह तिन सोही।।१८।।

चौपाई-
कर्ता, कर्म ज्ञान विस्तारा,
सूनहु[2] भेद प्रकृति अनुसारा।
सांख्य-शास्त्र जस[3] तीनहि माना,
जानु यथावत तेहि विताना[4]।।१९।।

१. अल्पउ = थोड़ी भी, २. सुनहु = सुनहु = सुनना। ३. जिसप्रकार ४. विस्तार।

सर्वभूतेषु येनैकं
भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु
तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।।२०।।

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं
नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु
तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।।२१।।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मि-
न्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च
तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२।।

नियतं सङ्गरहित-
मरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म
यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ।।२३।।

यत्तु कामेप्सुना कर्म
साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं
तद्राजसमुदाहृतम् ।।२४।।

सबहिं भूतमहुँ अक्षय एका,
भाव अभिन्न जो एकहि देखा।
जाहि, ज्ञानि-जन देखत सोही,
'सात्विक ज्ञान' जान तुम वोही।।२०।।

भिन्न-भिन्न तनु जीव, विभिन्ना,
जन जानहिं समरूप कभीना।
सोइ ज्ञान तुम 'राजस' जानू,
केशव कहहिं सत्य एहि मानू।।२१।।

एकहि तुच्छ कर्म-महुँ जोई,
होइहि पूर्ण सक्त[१] सम सोई।
बिन कारण सत-ज्ञान[२] विहीना,
सोइ तामसी बुद्धि मलीना।।२२।।

सब छल छोड़ि नित्य जन जोई,
नियमित करम करहिं जन सोई।
संग[३]-रहित, बिन रागहि द्वेसा,
होइहि सात्विक करम हमेसा।।२३।।

लिप्सा, फल, जागहिं उर जेही,
मिथ्या, मद, मानस-रखि तेही।
इच्छापूर्ति - निमित्त प्रयासा,
सोइ 'रजोगुण' बुध-गण[४]-भाषा[५]।।२४।।

१. सक्त=लिप्त। २. सतज्ञान= सत्य का ज्ञान। ३. संग=वासना, आसक्ति। ४. विद्वान लोग।
५. भाषा कहा है।

अनुबन्धं क्षयं हिंसा-
मनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म
यत्तत्तामसमुच्यते ।।२५।।

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी
धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः
कर्ता सात्त्विक उच्यते।।२६।।

रागी कर्मफलप्रेप्सु-
र्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता
राजसः परिकीर्तितः।।२७।।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः
शठोऽनैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च
कर्ता तामस उच्यते।।२८।।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव
गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण
पृथक्त्वेन धनञ्जय।।२९।।

हिंसा, पौरुष, क्षति परिनामा[१],
बिन विचार केवल अज्ञाना।
सोइ तामस सब लोगन कहहीं,
पर दुःख हेतु करम सब करहीं।।२५।।

बिन-मद-संगहिं[२] धीरज धारी,
साहस परम सदा अधिकारी।
सिद्धि-असिद्धि रहे थिर जोई।
सोइ सात्विक कर्ता नित होई।।२६।।

दोहा– हिंसक, विषयी, लालची,
हर्ष - विषादहि - दीन
'राजस' कर्ता सोइ जो,
सतत कामना लीन।।२७।।

चौपाई– शास्त्र विरुद्ध, हठी, शठ जोई,
दीर्घ सुत्रि आलस मति होई।
प्राकृत खिन्न परहि-अपमानी,
सोइ, कर्ता, तामस जगमानी।।२८।।

दोहा–
त्रिविध, धनञ्जय! प्रकृति गुण,
जोइ कथित मुख-मोहिं।
धैर्य, बुद्धि-अन्तर विशद,
सुनहु अशेषहि-सोहि।।२९।।

१. परिणाम। २. आसक्ति।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च
कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति
बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।।३०।।

यया धर्ममधर्मं च
कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति
बुद्धिः सा पार्थ राजसी।।३१।।

अधर्मं धर्ममिति या
मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च
बुद्धिः सा पार्थ तामसी।।३२।।

धृत्या यया धारयते
मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या
धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।।३३।।

यया तु धर्मकामार्था-
न्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी
धृतिः सा पार्थ राजसी।।३४।।

चौपाई–

कर्म–अकर्महि, भय, भयहीना[१]
का, करणीय, न कवन, कभी ना।
केहि बन्धन, केहि मुक्ति दिलाई,
सात्विक बुद्धि, पार्थ! कहलाई।।३०।।

कार्य–अकार्य–हीन बुधि जेही,
सकहि न कुछु निर्णय करि तेही।
धर्म–अधर्म जानि नहिं पाई,
पार्थ! सोइ 'राजसि' कहलाई।।३१।।

बुद्धि मोह–तम, आवृत जोही,
मानहिं धर्म अधर्महि कोही।
सबहि विरुद्ध जानि एहि भाँती,
अर्जुन! धृति सात्विक कहलाती।।३२।।

अचला–धृति–बल, जन जब धरई,
प्राण–इन्द्रि–मन–करमहि करई।
ध्यान–योग–बल अस कर जबहीं,
पार्थ! सोइ धृतिं सात्विक कहहीं।।३३।।

अर्थ, काम–धर्मादि विचारा,
पुनिहि संग–वश जोइ धृति धारा।
फलहित लिप्त निरन्तर रहई,
पार्थ! सोइ धृति राजसि कहई।।३४।।

---

१. भयहीता = निर्भयता।

यया स्वप्नं भयं शोकं
विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा
धृतिः सा पार्थ तामसी।।३५।।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं
शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र
दुःखान्तं च निगच्छति।।३६।।

यत्तदग्रे विषमिव
परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्त-
मात्मबुद्धिप्रसादजम् ।।३७।।

विषयेन्द्रियसंयोगा-
द्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव
तत्सुखं राजसं स्मृतम्।।३८।।

यदग्रे चानुबन्धे च
सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं
तत्तामससमुदाहृतम् ।।३९।।

निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख सारा,
नहिं छोड़हिं उन्मत्त विचारा।
एहि प्रकार जेहि धृति वश होई,
पार्थ! तामसी, कह धृति सोई।।३५।।

अब सुनु भरत श्रेष्ठ! बलवाना,
त्रिविध भाँति सुख करउँ बखाना।
जेहि अभ्यास रमत सुख-सबहू
होइहि अन्त सकल दुख कबहूँ।।३६।।

प्रथमहिं जोहि गरल सम होई,
किन्तु अन्त अमृत सम सोई।
जोइ निज बुद्धिहि तुष्टि प्रदायी,
वह सुख नित सात्विक कहलाई।।३७।।

प्रथमहि जोहि सुधा सम होई,
पर, परिणाम गरल सम होई।
इन्द्रि विषय संयोगहि सेही,
सुलभ होइ राजस सुख वेही।।३८।।

आदि-अन्त मोहित जोइ करई,
निद्रा, आलस, जन-मन भरई।
पुनि प्रमाद-वश सुख जोइ पावे,
सोइहि सुख तामस कहलावे।।३९।।

न तदस्ति पृथिव्यां वा
दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं
यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः।।४०।।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां
शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि
स्वभावप्रभवैर्गुणैः ।।४१।।

शमो दमस्तपः शौचं
क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं
ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।४२।।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं
युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च
क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।४३।।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं
वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म
शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।४४।।

जीवलोक, सुरलोकहि माँही,
अथवा सुरमहुँ कहुँ[१] अस नाहीं।
प्रकृति-तीन-गुण-हीनहि जोई,
प्रभु, पारथ समुझावत सोई।।४०।।

दोहा-

शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, द्विज,
भावज - गुण - अनुरूप।
बाँटिं कर्म सब धर्म के,
सहज परंतप! रूप।।४१।।

शुद्धि, क्षमा, दम[२] शान्ति, तप,
धर्म, बुद्धि विज्ञान।
सहज कर्म द्विज जाति के,
तन - मन - सरल महान्।।४२।।

शौर्य, शक्ति, संकल्प दृढ़,
युद्ध कलाहि प्रवीन।
ईश्वर-भाव, उदारता,
दीनहिं करहिं अदीन[३]।।४३।।

गोसेवा, कृषि कर्म औ,
क्रय - विक्रय - व्यापार।
जन-सेवा नित शूद्र के,
स्वाभावज - व्यवहार।।४४।।

१. कहु = कोई, कहीं भी। २. दम = इन्द्रियों का दमन। ३. अदीन = घनी।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः
संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं
यथा विन्दति तच्छृणु।।४५।।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां
येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य
सिद्धिं विन्दति मानवः।।४६।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः
परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म
कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।४७।।

सहजं कर्म कौन्तेय
सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण
धूमेनाग्निरिवावृताः ।।४८।।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र
जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां
सन्न्यासेनाधिगच्छति ।।४९।।

चौपाई–

निज–निज करम, करत जन जोई,
पावत परम सिद्धि नर सोई।
निज भावज करमहिं रत जोही,
जेहि–विधि, पाइ सिद्धि सुनु सोही।।४५।।

जोइ, उदभव[1] जग जीवहिं केही,
जोई व्याप्त सब लोकन मेहीं।
निज करमहिं, तेहि प्रभु की पूजा,
परम सिद्धि नर पाइ न दूजा[2]।।४६।।

होइ अति श्रेष्ठ, अगुण निज धरमा,
शुभ आचरित नाहिं पर धरमा।
निज–निज धरम करहिं जन जोई,
करम करत तेहि पाप न होई।।४७।।

होइ, सदोष, सहज निज करमा,
पुनि तेहि त्याग न उत्तम धरमा।
दोषावृत सब कर्महिं वइसे,
पारथ! पावक धूमहिं जइसे।।४८।।

अनासक्त मति, मन–वश जोऊ,
नहिं लिप्सा व्यापत नर सोऊ।
होइ निषकर्म सिद्धि शुभ तेही,
पावहिं नर, सन्यासहि सेही।।४९।।

१. उदभव = उदभव, उत्पत्ति, २. नदूजा = दूसरा कोई नहीं।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म
तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय
निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।५०।।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो
धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा
रागद्वेषौ व्युदस्य च।।५१।।

विविक्तसेवी लघ्वाशी
यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं
वैराग्यं समुपाश्रितः।।५२।।

अहङ्कारं बलं दर्पं
कामं क्रोधं परिग्रहम्।।
विमुच्य निर्ममः शान्तो
ब्रह्मभूयाय कल्पते।।५३।।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा
न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु
मद्भक्तिं लभते पराम्।।५४।।

जेहि प्रकार सिधि पावत कोई,
ब्रह्म वसत तेहि उर महुँ सोई।
कुन्ति पुत्र! तुम सुनहु समासा[१],
करउँ तुमहिं वह ज्ञान प्रकाशा।।५०।।

छन्द–छप्पय–

निज बुद्धि बल, अति शुद्ध होइ,
धृति से सदा मन–वश किये।
इन्द्रिय–विषय सब त्यागिके,
यति, राग–दोषहु नहिं हिये।।५१।।

छन्द छप्पय–

मित–भोजि[२], तन–मन–वचन, वश
एकान्त सेवी होइ–सदा
चिन्तन सतत शुचि मनहिं कर,
वैराग्य पालन करि – तथा।।५२।।

क्रोधादि बल–मद–दंभ पुनि–
संग्रह प्रवृति[३] – सब – छोड़िके
रह–रत सतत शुभ शांत चित,
नर, ब्रह्म से मन जोड़िके।।५३।।

होइ ब्रह्म मय, मन मोद युत,
कामादि चिन्ता मुक्त जो।
सब जीव में–समभाव रह,
मम भक्ति से यति[४] युक्त हो।।५४।।

---

१. समासा संक्षेप में। २. मित भोजि = अल्प भोजन करने वाला। ३. प्रवृति = प्रवृत्ति,
४. यति = योगी।

भक्त्या मामभिजानाति
यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा
विशते तदनन्तरम्।।५५।।

सर्वकर्माण्यपि सदा
कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति
शाश्वतं पदमव्ययम्।।५६।।

चेतसा सर्वकर्माणि
मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य
मच्चित्तः सततं भव।।५७।।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि
मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहङ्कारा-
न्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।।५८।।

यदहङ्कारमाश्रित्य
न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते
प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।।५९।।

दोहा–

जेतना जइसे रहहुँ हम,
होइ भगति से ज्ञान।
सोइ मोहि महुँ मिलि सके,
तत्त्व हमारा जान।।५५।।

करत रहे सब करम के,
मोर परायण होइ।
यति अव्यय[१] पद पाइ ले,
कृपा हमारी जोइ।।५६।।

चौपाई–

करम-सकल अरपित कर मोहीं,
होइ मुझ पर निरभर यति सोही।
हमहिं निरन्तर धर उर माहीं,
भक्ति-योग आश्रित नर ताहीं।।५७।।

रखु निज चित, शुभ चिन्तन मेरे,
मोर कृपा दुःख तरहु घनेरे।
यदि, मद-करि तुम सुनहु न मोरी,
होइ विनाश हानि अति तोरी।।५८।।

करऊँ न युद्ध कहउ मद मेहीं,
वृथा होइ यह निरणय तेही।
प्रकृति तोर सब तुमहिं कराई,
होइ विवश तुम करहु लड़ाई।।५९।।

१. अव्यय = अनश्वर, चिरस्था

स्वभावजेन कौन्तेय
निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुंनेच्छसि यन्मोहा-
त्करिष्यस्यवशोऽपि तत्।।६०।।

ईश्वरः सर्वभूतानां
हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि
यन्त्रारूढानि मायया।।६१।।

तमेव शरणं गच्छ
सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शन्तिं
स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।६२।।

इति ते ज्ञानमाख्यातं
गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण
यथेच्छसि तथा कुरु।।६३।।

सर्वगुह्यतमं भूयः
शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति
ततो वक्ष्यामि ते हितम्।।६४।।

यदि तव मन नहिं कर एहि भाँती,
कुन्तिपुत्र! ममता यदि आती।
निज स्वभाव वश करिहउ अबही,
कर्मबन्ध बाधित तुम सबही।।६०।।

सकल जीव हृदि वस भगवाना,
अर्जुन भ्रमण करत मनमाना।
देह-यंत्र पर होई सवारा,
जीव समूह घुमावहिं सारा।।६१।।

भारत! ईश शरण महुँ जाऊ,
तेहि की कृपा परमगति पाऊ।
शान्ति, सनातन पावहि सबही,
यह मति-मान शरण गहु अबही।।६२।।

एहि प्रकार अति गुप्त सुज्ञाना,
विविध भाँति हम तोहि बखाना।
यह रहस्यमय-ज्ञानहि कोही,
सोचि, समझ करु चाहत जोही।।६३।।

अतिशय प्रिय तुम होउ हमारे,
कहउँ एहि हित-हेतु तुम्हारे।
परम रहस्य गुप्त कछु बाता,
कहिहौं तोहि सुनहु तुम ताता।।६४।।

मन्मना भव मद्भक्तो
मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते
प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।६५।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य
मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।६६।।

इदं ते नातपस्काय
नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं
न च मां योऽभ्यसूयति।।६७।।

य इमं परमं गुह्यं
मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा
मामेवैष्यत्यसंशयः ।।६८।।

न च तस्मान्मनुष्येषु
कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मा-
दन्यः प्रियतरो भुवि।।६९।।

छन्द-छप्पय-

धरु मन हमहिं, नित यजन करु,
करु नमन सब मोहि मानिके।
एहि भाँति आवहुँ पास मम,
प्रण-सत्य हमरो जानिके।।६५।।

छोड़िके सब धरम के,
हमरी शरण में प्राप्त हो।
करिहउँ तुमहिं अघ मुक्त हम,
नहिं शोक चिन्ता व्याप्त हो।।६६।।

चौपाई-

भक्ति-रहित, जेहि जन-मन होई,
निष्ठा तप सब हीनहि जोई।
निन्दहिं मोहिं सुनन नहिं चाही,
यह उपदेश कहउ नहिं ताही।।६७।।

यह अति-गुप्त, अनुत्तम[१] ज्ञाना,
कहहि-भक्त, जोइ भक्ति-निधाना।
हमहिं मिलहि लहि भगति हमारी,
नहिं कछु संशय, कहत मुरारी।।६८।।

चौपाई-

तोहि अपर[२] एहि जग नहिं कोई,
सेवक मोहिं अधिक प्रिय जोई।
नहिं एहि भुवि कोउ होवनिहारा,
अतिशय प्रियजन, होइ हमारा।।६९।।

१. अनुत्तम= जिससे उत्तम दूसरा नहीं हो। २ अपर = दूसरा, अन्य।

अध्येष्यते च य इमं
धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाह-
मिष्टः स्यामिति मे मतिः।।७०।।

श्रद्धावाननसूयश्च
शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोका-
न्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।।७१।।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ
त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः
प्रनष्टस्ते धनञ्जय।।७२।।

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा
त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः
करिष्ये वचनं तव।।७३।।

सञ्जय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य
पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिमश्रौष-
मद्भुतं रोमहर्षणम्।।७४।।

चौपाई–

जो यह पढ़इ धरममय गाथा,
हमहिं तुमहिं बीचहि सम्बादा।
ज्ञान–यज्ञ–विधि–पूजहिं हमहीं,
यह मत–मोर सुनहु तुम सबहीं।।७०।।

द्वेष रहित, श्रद्धायुत जेही,
सुनहि, सकल अघ नाशइ तेही।
पुण्यवान–जन अति–शुभ लोका,
पावइ सोइ नर होइ विशोका।।७१।।

चौपाई–

क्या तुम सावधान मति होई,
सुनहु पार्थ–सम्बादहि सोई।
अज्ञानज भ्रम मोहहि सारे,
पृथा पुत्र भये दूर तुमारे।।७२।।

अरजुन कहलें

अच्युत! मोह नष्ट सब मोरे,
शुभ–मति पाइ अनुग्रह तोरे।
संशयहीन भयउ मन मोरा,
पालउँ वचन सकल प्रभु तोरा।।७३।।

संजय कहलें

छन्द–छप्पय– एहि भाँति केशव–पार्थ के,
सम्बाद अचरज से भरे।
अति रोमहर्षक तत्त्व वच[३],
सब श्रवण–पथ हमरे भये।।७४।।

३. लहि = पाकर।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवा-
नेतद्गुह्यमहं परम्।।
योगं योगेश्वरात्कृष्णा-
त्साक्षात्कथयतः स्वयम्।।७५।।

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य
संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं
हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।।७६।।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य
रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राज-
न्हृष्यामि च पुनः पुनः।।७७।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो
यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूति-
र्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।७८।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्न्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः।।

श्रीव्यास करुणा-वश सबहि,
अति गुह्य तम इस योग को।
प्रत्यक्ष होइ हमने सुना,
कहते हुए श्रीकृष्ण को।।७५।।

पार्थ-केशव मध्य इस,
अति गुह्यतम् सम्बाद के।
सुनि-गुनि-सबहिं, पुनि-पुनि हमहिं,
मन भरहिं तेहि उल्लास से।।७६।।

राजन! विलक्षण रूप ई,
जगदीश श्री हरि के सभी।
गुनि-गुनि सबहिं, पुनि-पुनि हमहिं,
उपजहिं हरष उरु महुँ अभी।।७७।।

दोहा-

जहँ योगेश्वर कृष्ण जी हैं,
अर्जुन आयुधवान।
वैभव, जय श्री, नीति दृढ़,
वहीं मोर मति मान।।७८।।

निचोड़-

शून्य[१] शून्य[२] वारिधि[३] अशलोका, हरि-मुख निरगत, हर सब शोका।
पाइ दिव्य मानव तन जेही, करहिं सकल मख जीवन के ही।
अन्तरमन जेहि हरिहि समाई, सोइ जन पुरुषारथ सब पाई।
सगुनहिं अगुनहिं एकहि होई, जोइ समुझत सुधिवर शुचि सोई।।

पूर्णोऽयम् अष्टादशोऽध्यायः

●

---

१. शून्य = ०, २. शून्य = ०, ३. वारिधि = ७ (सात) = (७००) सात सौ।

शीघ्र प्रकाशित होने वाली मेरी अन्य पुस्तकें

पूर्व में प्रकाशित रघुवंशमङ्गलमहाकाव्य के समस्त १९ सर्गों का सम-श्लोकी हिन्दी पद्यानुवाद (लेखक मेरे पूज्य पिता आचार्य पं० श्री शिवमङ्गल जी 'मङ्गल' एवं सम्पादक मैं स्वयम्) के अतिरिक्त शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली मेरी अन्य पुस्तकें हैं–

- पूर्व एवं उत्तर मेघदूतम् (समश्लोकी हिन्दी पद्यानुवाद तथा अन्वय, सञ्जीवनी, माङ्गली टीका, हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहित)
- ईशावास्योपनिषद् (हिन्दी पद्यानुवाद एवं भाष्य)
- केनोपनिषद् (सरल हिन्दी पद्यानुवाद एवं भाष्य)
- रघुवंशमङ्गलमहाकाव्य (पाँच सर्गों तक का समश्लोकी हिन्दी पद्यानुवाद, सञ्जीवनी टीका, अन्वय, माङ्गली टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित)
- अथर्व-वैदिक चिकित्सा-पद्धति जो शास्त्राधारित तथा निजी वैद्य वंश-परम्परा से प्राप्त वानस्पतिक औषधियों के सहस्राधिक सफल एवं अनुभूत प्रयोगों का संग्रह है। साथ ही अथर्ववैदिक मन्त्र-चिकित्सा के गुरु-परम्परा से प्राप्त सफल प्रयोग वर्णित है।

आयुर्वेद की कुछ अन्य पुस्तकें तथा ज्योतिष की अन्य पुस्तकें (सटीक फलादेश एवं कष्ट-निवारक वानस्पतिक विधान)।

डॉ० जगदीश मिश्र



वृद्ध पितामह : पं० सरजू मिश्र
प्रपितामह : पं० लालबचन मिश्र
पितामह : पं० भृगुनाथ मिश्र

आत्मज : महाकवि आचार्य पं० शिवमङ्गल मिश्र 'मङ्गल'
एवं श्रीमती अतिराजी देवी
जन्म-स्थान : ग्राम- जैतपुरा, पो० - रुदलपुर, थाना- भोरे
जिला- गोपालगंज (बिहार)
जन्म तिथि : ०१-१२-१९४५
परिवार परिचय : पत्नी - श्रीमती फूलमती देवी
पुत्र - श्री मनोज कुमार मिश्र
पुत्रवधू - श्रीमती नीलम मिश्र
पौत्र - चि० अद्वैत मिश्र, पौत्री - गौराङ्गी मिश्र
शैक्षिक योग्यता : एम.ए. (संस्कृत)
आचार्य (ज्योतिष, साहित्य एवं आयुर्वेद)
पूर्व प्राचार्य : पंक्तिपावन गुरुकुल महाविद्यालय
चौमुखा, विजयीपुर, गोपालगंज, बिहार
विविध क्रिया-कलाप : सम्पादक : रघुवंशमङ्गल महाकाव्य
(समश्लोकी हिन्दी पद्यानुवाद) प्रकाशित
प्रकाश्य ग्रंथ : श्रीमङ्गलमुरलीमाधवम् (श्रीमद्भागवत् महापुराण के
विभिन्न कथानकों का सरस और गेय पद्यानुवाद)
मेघदूतम् (समश्लोकी हिन्दी पद्यानुवाद एवं अंग्रेजी अनुवाद)
केनोपनिषद् (भाष्य एवं हिन्दी पद्यानुवाद)
अथर्ववेदीय चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेद एवं अथर्ववेद आधारित)
ज्योतिष मङ्गल विमर्श (ज्योतिष एवं आधारित चिकित्सा पद्धति)
आयुर्वेद मङ्गल रत्न (शास्त्रीय एवं परम्परागत आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति

मङ्गल साहित्य शृङ्खला
Mangal Sahitya Shrinkhla